लघु उपनिषद त्रयी

(मांडुक्य, ईश एवं केन उपनिषद)

लेखक
सुरेश चौधरी 'इंदु'

शुक्तिका प्रकाशन

लघु उपनिषद त्रयी
प्रकाशक :
शुक्तिका प्रकाशन
(ए & ए इंटरपराईजेज का एक प्रकल्प)
516/4 बी एल साहा रोड
कोलकाता 700038
ISBN; 978-93-94660-23-6

लेखक : सुरेश चौधरी 'इंदु'

प्रथम संस्करण 2025
मूल्य : 500/- रू.

@ सर्वाधिकार लेखकाधिन

(A BOOK BY SURESH KUMAR CHOUDHARY , EXEGESIS OF THREE SMALL UPNISHAD , A SPRITUAL BOOK)

अनुक्रमणिका

1	प्रस्तावना	4
2	पुरोवाक ; श्री आशुतोष अंगिरस	7
3	उपनिषद चेतन से लेश एक सारस्वत कृति ; प. सुरेश नीरव	9
4	जीवन को आलोकित करने वाली ज्योति ; श्रीमती स्नेह लता बैद	11
5	उपनिषद एक परिचय	15
6	मांडूक्य उपनिषद	25
	परिचय	26
	शांति पाठ	33
	मंत्र	36
	समापन	70
7	इशोंपनिषद	74
	परिचय	75
	शांति पाठ	80
	मंत्र	84
	समापन	144
8	केन उपनिषद	146
	परिचय	147
	शांति पाठ	152
	प्रथम खंड	156
	द्वितीय खंड	185
	तृतीय खंड	203
	चतुर्थ खंड	240
	माहात्म्य	265
	समापन	273

प्रस्तावना

प्रिय पाठकों,
लघु उपनिषद त्रयी, नाम से ही उद्बोधित होता है कि उपनिषदों में भी जो लघुत्तम तीन उपनिषद हैं उनका संकलन एवं भाष्य है यह पुस्तक। छोटे या लघु कहने से ये लघु नहीं हो जाते इनका कथ्य का तत्व परम् है मन्त्रों के रहस्यों को समझना अति दुर्लभ है। ये तीन उपनिषद वैदिक सिद्धांतों की आधारशिला हैं।

इन तीन उपनिषदों को मेरी पुस्तक वेद से वेदान्त से लेकर उन्हें पुनः विस्तारित किया गया है; शंकर भाष्य, निजी भाष्य और समीक्षा के द्वारा।

मैं कोई संस्कृत का आचार्य नहीं, न ही कोई ज्ञानी सन्त हूँ बल्कि सामान्य गृहस्थ हूँ , अपने अनुभव और अध्ययन से जो जान सका उसे ही कलम बद्ध किया गया है। अतः त्रुटियां स्वाभाविक है , उन्हें क्षमा करते हुए केवल नीर-क्षीर-विवेक द्वारा क्षीर-क्षीर ग्रहण कीजियेगा।

भारतीय वांग्मय में वेदों के बाद उसके सार वेदान्त का महत्व है और वेदान्त अर्थ उपनिषद । यूँ तो 108 उपनिषद कहे गए हैं उनमें 11 मुख्य उपनिषद माने गए हैं। इन 11 में भी मन्त्रों की संख्या अनुसार जो लघु से भी लघुतम हैं उन तीन उपनिषदों का चयन किया और पाया कि सम्पूर्ण वेदान्त विशेषकर अद्वैत वेदान्त का निचोड़ ये तीन उपनिषद ही हैं।

ईशावास्य के 18 श्लोक गीता के 18 अध्यायों का सार कहें तो अतिशियोक्ति नहीं होगी। वहीं मांडूक्य सबसे छोटा है ठीक बंगाल की लाल मिर्च की तरह

जो देखन में छोटी लगे घाव करे गंभीर। बड़े बड़े भाष्यकारों ने तो इन 12 श्लोकों को इतना विस्तार दिया है कि 12 पुस्तके लिख डाली फिर भी यह अथाह समुद्र की तरह रहस्यमयी बने हुए है। केन में 34 श्लोक हैं जो चार खण्डों में विभाजित है ये अद्वैत के उन सिद्धांतों को प्रतिपादित करते हैं जिनको जानना ब्रह्म को जानने की प्रथम सोपान है।

यह पुस्तक "केनोपनिषद, ईशावास्य उपनिषद, और मांडूक्य उपनिषदों पर शंकर भाष्य" भारतीय वेदांत दर्शन के गहरे रहस्यों को समझने के लिए एक समर्पित प्रयास है। इन उपनिषदों का अध्ययन केवल धार्मिक या दार्शनिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि जीवन के उच्चतम सत्य, आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीय संबंध को समझने के दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

शंकराचार्य के भाष्य भारतीय विचारधारा का अद्वितीय योगदान हैं, जो हमें ब्रह्म और आत्मा के साक्षात्कार की ओर मार्गदर्शन करते हैं। इन भाष्यों के माध्यम से शंकराचार्य ने उपनिषदों की गहरी और जटिल अवधारणाओं को सरल और सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया। उनकी वाणी में एक प्रकार की तर्कसंगतता और आध्यात्मिक गहराई है, जो आज भी हमें आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की ओर प्रेरित करती है।

इस पुस्तक का उद्देश्य गूढ़ वैदिक एवम आध्यात्मिक रहस्यों के रहस्यविस्तार से प्रस्तुत करना है, ताकि पाठक इन उपनिषदों के माध्यम से आत्मा, ब्रह्म और अस्तित्व के गूढ़ रहस्यों को समझ सकें। इस पुस्तक में, प्रत्येक उपनिषद पर अति सरल और पठनीय भाष्य किया गया है, ताकि इन महान विचारों को एक सामान्य व्यक्ति भी सहज रूप से ग्रहण

कर सके। साथ ही, इन भाष्यों की समीक्षा और विवेचना के माध्यम से पाठक को एक नई दृष्टि मिल सके।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक न केवल वेदांत के प्रति आपके ज्ञान को विस्तृत करेगी, बल्कि जीवन के उच्चतम उद्देश्य की ओर चलने की प्रेरणा भी प्रदान करेगी। यह प्रयास ग्रन्थों के विचारों और उपनिषदों के शाश्वत महत्व को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

धन्यवाद।

सुरेश चौधरी 'इंदु'
विवाह पंचमी (मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष पंचमी) तदनुसार 6 दिसंबर 2024

पुरोवाक्

'लघु-उपनिषद्-त्रयी" - इस ग्रन्थ संज्ञा का चुनाव ही आदरणीय सम्वेदनशील लेखक-कवि डा० सुरेश चौधरी 'इन्दु' जी की दृष्टि की दिशा, व्यापकता और उदात्तता का न केवल परिचायक ही है बल्कि उस प्रातिभ ज्ञान का भी द्योतक है जिससे भावपूर्ण कवि और विचार प्रधान लेखक की अग्रसरता जीवन भर बनी रहती है। वस्तुतः यह ग्रन्थ पढने के लिए नहीं स्वाध्याय के लिए है क्योंकि यह यह ग्रन्थ उस वैदिक आर्ष प्रतिभा से परिचित कराने का साहस करती है जिसका आरम्भ जिज्ञासा से होते हुए सौन्दर्य पूर्ण जीवन के अनुभवों में रूपान्तरित होता है। ये तीन उपनिषद् उस स्वस्थ एवम् पारदर्शी मानसिकता एवम् व्यवहार की अभिव्यक्तियां हैं जिसकी कल्पना मात्र भी २१वीं शताब्दी का व्यक्ति नहीं कर सकता क्योंकि वर्तमान कालिक समाज और व्यक्ति दोनों ही बौद्धिक-भावनात्मक- कार्मिक द्वन्द्व के साथ साथ भाषाई अतिचार के साथ जूझ रहा है इसलिए यह ग्रन्थ समाज और व्यक्ति दोनों को न केवल वैकल्पिक सोच समझ दृष्टि और व्यवहार ही प्रदान करता है बल्कि डिकन्डिंशनिंग (निर्वृतिक) होने का मार्ग भी प्रशस्त करता है जिससे व्यक्ति और समाज श्रेयस्, लोक कल्याण के साथ ब्रह्म भाव को भी प्राप्त होगा। इसई परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए कवि-लेखक ने मूल मन्त्र के साथ उसका भावानुवाद, अनुवाद, भाष्य जिसमें समीक्षा एवम् व्याख्या, तदनन्तर निष्कर्ष और तत्त्वज्ञान को भी समाहित किया है। विद्वत्ता को सरल भाषा में सर्वजन बोधगम्य बनाने का दुस्साहस डा० सुरेश जी ने किया है वह विस्मयकारी एवम् प्रभावी है जिसके लिए उनका परिश्रम और दृष्टि नितान्त प्रशंसनीय

है। इस ग्रन्थ के लिए उनकोए कोटिशः साधुवाद। निश्चित ही यह ग्रन्थ अध्येताओं में समादृत होगा और प्रतिष्ठा को प्राप्त करेगा।

शुभकामनाओं सहित

आशुतोष आंगिरस
IASSK,डायरेक्टर, संस्कृत विभाग
एस डी कॉलेज (लाहौर)
अम्बाला कैंट

उपनिषद चेतना से लैस एक सारस्वत कृति

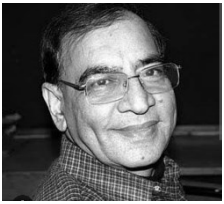

सम्मान्य श्री सुरेश चौधरी जी भारतीय संस्कृति के एक ऐसे सचल वाक् तीर्थ हैं जो अहर्निश एक लंबे समय से भारतीय दर्शन , वैदिक सिद्धांतों और मंत्रों के गूढ़ रहस्यों को सरल भाषा में जिज्ञासु पाठकों तक पहुंचाने के लिए प्राणपण से लगे हुए हैं। मेरी जानकारी में शायद ही ऐसा कोई विषय बचा होगा जिसकी सुरेश चौधरी जी ने सारगर्भित मीमांसा नहीं की हो। उनकी इसी ऊर्ध्वमुखी, आर्योपनिष्ठ चेतना का ही यह शिवसंकल्प सुभग फल है कि उनकी अनन्य एकनिष्ट अन्वेषी दृष्टि इस बार तीन लघु उपनिषदों की और गंभीरता से आकर्षित हुई है। वैसे भी किसी दृष्टि का ऐसे सारस्वत विषयों पर केन्द्रित होना तभी संभव हो पाता है जब कभी कोई चेतना किसी अलौकिक शक्ति पुंज के सानिध्य में जाकर अवस्थित हो जाए। और फिर उपनिषद का तो अर्थ ही 'समीप उपवेशन' या 'समीप बैठना' ही होता है। जिज्ञासा से भरा हुआ कोई शिष्य जब ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाकर बैठता है तो यहीं उसका भाव बोध उपनिषद-प्रज्ञा को उपलब्ध हो जाता है । मेरी दृष्टि में सुरेश चौधरी जी स्वयं एक "उपनिषद-प्रज्ञा-उपलब्ध" व्यक्तित्व हैं। 'उप', 'नि' उपसर्ग तथा, 'सद्' धातु से निष्पन्न हुए ये उपनिषद् हिन्दू धर्म के महत्त्वपूर्ण श्रुति धर्मग्रन्थ हैं। और वैदिक वाङ्मय के अभिन्न भाग भी। ये मूलतः संस्कृत में लिखे गये हैं। और इन उपनिषदों की संख्या लगभग 108 है, किन्तु मुख्य उपनिषद 13 ही माने गए हैं। और उल्लेखनीय है कि हर एक उपनिषद किसी-न-किसी वेद से जुड़ा हुआ है। इनमें परमेश्वर, परमात्मा-ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन दिया गया है। उपनिषदों में जो तीन लघु उपनिषद हैं-

माण्डूक्योपनिषद, "केनोपनिषद और ईषावास्य उपनिषद। सुरेश चौधरी जी ने इन्हीं तीनों को "लघु उपनिषदों की त्रयी कहा है और इस "लघु उपनिषद त्रयी" के माध्यम से इन्होंने भारतीय वदांत के गहन-गूढ़ रहस्यों को और उनके दृष्टिकोण को सरल भाषा में पाठकों तक पहुंचाने का जो सफल-सक्षम प्रयास किया है, वह प्रणम्य है। प्रशंसनीय है और अनुकरणीय भी।चिंतन के आध्यात्मिक जगत में उपनिषद चेतना से लैस इस सारस्वत कृति की असंदिग्ध चिरंजीविता के प्रति मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ। सुरेश चौधरी जी के इस तुलसी प्रयास को शत् शत् नमन्। स्वस्ति!! इत्यलम्!!

"पंडित सुरेश नीरव*
चिंतक-कवि/पत्रकार

जीवन को आलोकित करने वाली ज्योति है लघु उपनिषद त्रयी

उपनिषद सनातन दार्शनिक ज्ञान के मूल स्रोत है। आदरणीय लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा' उपनिषद को मुक्ति का द्वारा मानते हुए लिखते हैं -

वेदों के सुअंग प्रतिमूर्ति है परमात्मा की,
साधना उपासना के उत्तम आगार हैं।
भरे हैं वेदांत के सिद्धांत भी इन्हीं में सब,
पातक विनाशन को भागीरथी-धार है।।

हमारे उपनिषद दृष्टा ऋषियों की प्रखर मेधा के परिणाम मात्र नहीं अपितु उनकी अनुभूति के फल हैं। उपनिषदों की महिमा सिर्फ इसलिए नहीं है कि दाराशिकोह ने इनसे प्रकाश प्राप्त किया था या शापेनहावर, मैक्समूलर एवं अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने इनकी प्रशंसा की है। यदि वे उपनिषदों को बहुमान न भी देते अथवा इन्हें व्यर्थ बता कर यदि निंदा भी करते तो भी इनकी महिमा कम नहीं होती क्योंकि इनकी महिमा का आधार इनका शाश्वत, निर्मल, मंगलमय प्रकाशमय स्वरूप है।

मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है अखंड आनंद और शाश्वत शांति को प्राप्त करना। जीवन के सारे कार्य इसी एकमात्र लक्ष्य की सिद्धि के लिए किए जाने चाहिए। उपनिषद इसी परम लक्ष्य के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के विविध साधनों का उल्लेख करते हैं। हम भारतीय आज अपने सहज सुलभ दिव्य प्रकाश को छोड़कर सुख और शांति के लिए पश्चिम की संस्कृति की ओर उन्मुख हो रहे हैं। हमारा यह भ्रम दूर हो और हम उपनिषदों का यत्किंचित परिचय प्राप्त कर सकें, जीवन को सही दिशा दे सकें, इसी उद्देश्य से धर्म शास्त्रों के गहन अध्येता, मनीषी, चिंतक और कवि सुरेश चौधरी ने लघु उपनिषद त्रयी की रचना की है।

उपनिषद सैंकड़ों हैं। उनमें 11 मुख्य उपनिषद माने गए हैं। इन 11 में भी मंत्रों की संख्या के अनुसार जो लघु से भी लघुतम है उन तीनों उपनिषदों माण्डूक्योपनिषद, ईशावास्योपनिषद एवं केनोपनिषद

का चयन कर उनका भाष्य किया है। प्रत्येक मंत्र की व्याख्या, पद्यानुवाद और उसके आध्यात्मिक संदेश को बहुत ही सरस और सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आदरणीय सुरेश जी एक समय सचेत साहित्यकार ही नहीं एक सतत साधनारत आत्मान्वेषक भी है। उनका चिंतक मन जीवन के गहन प्रश्नों पर विचार विमर्श करता ही रहता है। आपने विचार किया होगा कि उपनिषद जैसी अमूल्य ज्ञान संपदा के होते हुए भी हम भारतीय मूल्यहीनता के भयानक जंगल में भटक रहे हैं, भौतिकता की चकाचौंध में दिग्भ्रमित होकर दौड़ रहे हैं तथा जो कुछ भी शुभ और श्रेयस्कर है वह हाशिये पर आता जा रहा है। परिणामत: चारों ओर राग, द्वेष, आडंबर और कुटिलता का बोलबाला है। विद्वान लेखक का मानना है कि भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति से मनुष्य को सच्ची शांति कभी नहीं मिल सकती। हमारे उपनिषदों में वर्णित आत्म स्वरूप के सम्यक् ज्ञान से ही मनुष्य शोक- मोह से निवृत होकर शाश्वत शांति को प्राप्त कर सकता है। इस हेतु उन्होंने सबसे लघुतम तीन उपनिषदों का चयन किया है ताकि वर्तमान पीढ़ी को शांति एवं आश्वासन प्राप्त हो सके। जिनका चित्त अशांत है उन्हें चित्त की सांत्वना के लिए यह लघु उपनिषद त्रयी संजीवनी का कार्य करेगी। इनके अध्ययन और मनन से मनुष्य के विचार और भाव अवश्य संयत होंगे। गूढ और दुरूह लगने वाले औपनिषदिक मंत्रों का बहुत ही सहज सरल और सटीक पद्यानुवाद कर इन मंत्रों को बोधगम्य बना दिया है। उदाहरण के लिए ॐ को ही सृष्टि का आधार मानने वाले और ओंकार के माध्यम से आत्मा की खोज का मार्ग प्रशस्त करने वाले मांडूक्योपनिषद् का प्रथम मंत्र

"ॐ इतिदं सर्वं, यद्येतद् ब्रह्म। ओंकारः च ब्रह्म।"
यह सुनने और समझने में कठिन लगता है किंतु पद्य अनुवाद इतना सरस है कि तत्काल हृदयंगम हो जाता है।
ॐ ही अक्षर महान,
सर्व सृष्टि का है प्रमाण।
भूत,भव और भविष्य,
इनका आधार यह निश्छल।
त्रिकालातीत परम सत्य ,ओंकार सदा अनंत।
ईशावास्योपनिषद के द्वितीय मंत्र:
"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥"
का पद्यानुवाद मंत्र की गरिमा में चार चांद लगा देता है
कर्म करो इस जगत में,
सौ वर्षों तक जीवन जीओ।
***निष्काम भाव से कर्म करो,* ***
मुक्ति का मार्ग तभी पाओ।
नहीं है कर्म से बचाव,
यही धर्म है, यही प्रभाव।
कर्म के बिना न जीवन पूर्ण,
यहीं से होता मोक्ष का मूल।
जो कर्म करे त्याग से भरे,
वह बंधन से मुक्त रहे।
कर्म ही जीवन का आधार,
यही सत्य, यही उद्धार।

पद्य अनुवाद के पश्चात मंत्र में प्रयुक्त सभी शब्दों के शब्दार्थ, भावार्थ, व्याख्या, आधुनिक संदर्भों में मंत्रों की शिक्षा एवं उपादेयता तथा निष्कर्ष का विवरण मंत्र के अर्थ को बहुत सरलता से हृदयंगम करा देते हैं। लेखक का श्रम इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने किसी भी पहलू को अनुछुआ नहीं रहने दिया है। उन्होंने ज्ञान के इस महान सागर में गोता लगाया है और अनेकानेक अमूल्य रत्न निकाल कर लाए हैं।

सनातन धर्मावलंबियों के लिए यह ज्ञान राशि गागर में सागर की कहावत को चरितार्थ करने वाली है। इन मंत्रों का प्रतिदिन स्मरण एवं अनुचिंतन जहां आध्यात्मिक एवं मानसिक उपलब्धि का आलंबन बनता है वहीं आसपास के समूचे पर्यावरण को शुद्ध बनाने में भी निमित्त बन सकता है।

संक्षेप में कहूं तो इन मंत्रों एवं उनकी व्याख्या में तत्व की गहराई है, श्रद्धा का उद्रेक है, आत्मगुणों की पहचान है, जागरण का आह्वान है और आत्मोपलब्धि के संकेत है। विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को आनंद के साथ-साथ मानसिक, भावनात्मक और आत्मिक संबल प्रदान करेगी और जीवन की तमाम चुनौतियों को पार पाना सहज बनाएगी। अब तक जिन उपनिषदों को विद्वत् जनों की संपत्ति माना जाता था उन्हें जन-जन की निधि बनाने का महत्वपूर्ण कार्य आपके द्वारा हुआ है। तीनों उपनिषदों से बूंद बूंद सहेज कर *लघु उपनिषद त्रयी* रुपी कलश में भरा यह अमृत अध्यात्म रसिक भाई बहनों को अमृतत्व की ओर ले जाने में निमित्त बनेगा, ऐसा विश्वास है। इति शुभम्!

स्नेहलता बैद
प्रतिष्ठित समाज सेविका, चिंतक
संपादक, कल्याण भारती
कोलकाता

<u>उपनिषद:-एक परिचय</u>

हे प्राणदाता!
व्योम में व्याप्त शून्य की गंभीरता,
सागर की गहराई में समाई नीरवता,
समाहित करती-
धरा की सहनशीलता
ॐकार के त्रिगुणों से आभासित कर,
ब्रह्म है आत्म-चिंतन,
विष्णु; भौतिक संरक्षक
शिव; कल्याणकारी मोक्ष प्रदाता,
तीनो का प्रतिरूप ओम्,
समग्र रूप से ओम्-मय कर,
ब्रह्म का वैश्वानर
सम्पूर्ण कामनाओं को
परिपूर्ण करता तेजस रूप
ओकार!

संतति का उत्कर्ष,
ब्रह्म-ज्ञान का समर्पण
सब को सम्मानित करता
उकार!

भूत-भविष्य-वर्तमान से मुक्त
आदि-अंत-अनादि से परे प्राज्ञ ब्रह्म

मकार!
ॐकार- निर्भय ब्रह्म पद,
मेरे चित्त को इस प्रणव में,
समाहित कर |

उपनिषदों में ओम् शब्द को बहुत महत्व दिया गया है| कठोपनिषद् कहती है कि सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, जिसकी साधना के लिए सारे तप किये जाते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्षुजन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं; वह पद है ओम्, यह अक्षर ही परब्रह्म है। यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है| इस अक्षर को ही 'यही उपास्य ब्रह्म है'-ऐसा जानकर जो स्त्री या पुरूष पर अथवा अपर; जिस ब्रह्म की इच्छा करता है, उसे वही प्राप्त हो जाता है| यदि उसका उपास्य परब्रह्म हो तो वह केवल जाना जा सकता है और यदि अपर ब्रह्म हो तो प्राप्त किया जा सकता है| यही ॐकार रूप आलम्बन ब्रह्म प्राप्ति के लिए सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ यानी सबसे अधिक प्रशंसनीय है| इस आलम्बन को जान कर साधक परब्रह्म में स्थित होकर महिमान्वित होता है तथा अपरब्रह्म में ब्रह्मत्व को प्राप्त होकर ब्रह्म के समान उपासनीय होता है| माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है, उसी की व्याख्या है इसलिए यह सब ॐकार ही है| इसके सिवा जो तीनों कालों से परे, अपने कार्य से ही विदित होने वाला और काल से अपरिच्छेद्य आदि है, वह भी ॐकार ही है| आत्मा और इसके पादों के साथ ॐकार और उसकी मात्राओं का तादात्म्य करते हुए कहा गया है कि वह यह आत्मा अक्षर दृष्टि से ॐकार है एवं मात्राओं के साथ संयोग के कारण इसमें स्थैर्य है| पाद ही मात्रा हैं और मात्रा ही पाद हैं| वे मात्राएँ अकार, उकार, और मकार हैं| ब्रह्म का वैश्वानर रूप पहली मात्रा अकार है| जो उपासक इसके गूढ़ अर्थ को समझ लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त

कर लेता है| तेजस ॐकार की द्वितीय मात्रा उकार है, जो उपासक इसके मूल अर्थ को ग्रहण करने की क्षमता रखता है, वह अपने ज्ञान एवं संतान का उत्कर्ष करता है| वह सबके प्रति समभाव रखता है और उसके वंश में कोई ब्रह्मज्ञानहीन पुरुष नहीं होता| प्राज्ञ ब्रह्म ॐकार की तीसरी मात्रा मकार है, जो उपासक इसे तदानुरूप ग्रहण करता है, वह इस सम्पूर्ण जगत् को माप लेता है अर्थात् इसका यथार्थ स्वरूप जान लेता है| अकार विश्व-प्राप्ति में सहायक है,उकार तेजस और मकार प्राज्ञ पर अधिपत्य का साधन है किन्तु अमात्र में किसी की गति नहीं होती| मात्रा रहित होकर ॐकार तुरीय आत्मा ही है, जो उसे इस प्रकार ग्रहण करता है, वह स्वत: अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है| आप सभी चित्त को ॐकार में समाहित करें| यह निर्भय ब्रह्मपद है| ॐमें नित्य समाहित रहने वाले व्यक्ति को कभी किसी प्रकार का भय त्रस्त नहीं करता. प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है| प्रणव ही सबके हृदय में स्थित ईश्वर है| इस प्रकार सर्वव्यापी ॐकार को जानकर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं करता| जिसने मात्राहीन, अनन्त मात्रा वाले शिवमय ॐकार को जाना है, वही मुनि है और कोई नहीं| मुण्डकोपनिषद् के अनुसार प्रणव धनुष है एवं आत्मा बाण है| ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है| उसका सावधानी से वेधन करना चाहिए और बाण को उसमें तन्मय हो जाना चाहिए अर्थात् ब्रह्म रूपी लक्ष्य से एकरूप हो जाना चाहिए| छान्दोग्य उपनिषद् कहती है कि हमें ॐ अक्षर की ही उपासना करनी चाहिए ||

व्याकरण की दृष्टि से उपनिषद का शाब्दिक अर्थ उप+नि+सद है, जिसका अक्षरशः आशय इस प्रकार है| उप - निकट, नि-नीचे, सद-बैठना| प्राचीन वैदिक काल में उच्चासन पर पदस्थ गुरु के समीप भूमि पर आसीन होकर शिष्यों को जो श्रुति ज्ञान प्राप्त होता था, वह उपनिषद कहलाता था, इस

प्रकार मूलतः उपनिषद लिखित ग्रन्थ न हो कर श्रुति ग्रन्थ हैं| इसे वेदांत भी कहते हैं| वेदों में हर मंडल के पश्चात सार बताया जाता था, उसे ही उपनिषद में परिवर्तित किया गया| उपनिषद में मुख्य रूप से कर्म, ब्रह्म, आत्मा, जीवात्मा आदि पर ही परिचर्चा है| वैदिक काल में एक ब्रह्म को सर्व माना गया है एवं २४ देवों का पूजन एवं कीर्ति वर्णन है| ये सभी देव प्रकृति जन्य हैं, (अग्नि, वायु, जल, सूर्य, पूषा.....आदि)

कुछ परिस्थितियों में यह पति-पत्नी के बीच तो कहीं पिता पुत्र के बीच एवं कठोपनिषद में यह तरुण युवक एवं यम के बीच का वार्तालाप है| कहीं अध्यापक नारी रूप में हैं एवं छात्र स्वयं राजा हैं| वार्ताओं के अलावा उपनिषद में उद्धरण, दृष्टांत, दृष्टव्य, रूपक भी दिए गए हैं |
गुफाओं में, आश्रम में, गंगा तट पर, सदियों से यह ज्ञान बाँटा जा रहा है| यह कह सकते हैं कि उपनिषद, श्रोत्रिय ज्ञान का अद्भुत लिपिबद्ध संकलन है |

अधिकांश उपनिषदों में या तो यह चार वेदों का विस्तारण है या व्यक्तव्य वेदांत के रूप में दिया गया है| उपनिषदों की विशेषता यह है कि यह पूर्ण रूपेण ब्रह्माण्ड में समाहित है एवं कट्टरवाद से परे है| उपनिषद सैद्धांतिक रूप से शून्य एवं शांति को प्राप्त करने का द्वार है| यह वैदिक संस्कृति का मेरुदंड है| मूलतः भारतीय दर्शन का भाव-विस्तरण करता यह ग्रन्थ कर्म, योग, पुनर्जन्म, मोक्ष, आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान ,प्राण को परिभाषित करता है | उपनिषद, सृष्टि की रचना उत्पत्ति के कारण एवं इसमें स्थित तत्व के विश्वास को दर्शाता है|

पाश्चात्य शोधकर्मियों के अनुसार उपनिषद ईसा से ८००-४०० वर्ष पूर्व लिखे गए हैं| बाल गंगाधर तिलक के शोध के अनुसार ये ६००० से ८०० वर्ष ईसा से पूर्व लिखे गए हैं |

यूँ तो २५० से ऊपर उपनिषदों का वर्णन है लेकिन अब तक १०८ उपनिषदों का अस्तित्व ज्ञात हैं| इनमें से १२ मुख्य उपनिषद कहे गए हैं| ये हैं

ऐतरेयोपनिषत्, ईशोपनिषत्, कठोपनिषत्, केनोपनिषत्, मांडुक्योपनिषत् मुंडकोपनिषत् प्रश्नोपनिषत्, श्वेतशवेरपनिषत्, तैत्तिरीयोपनिषत, छान्दोग्योप्निशत, बृहद अरण्यकोपनिषद |

१०८ उपिनषदों की यह सूची **मुक्तिक उपनिषद** में १:३०-३९ में दी गयी है :

ईश = शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् केन = सामवेद, मुख्य उपनिषद् कठ उपनिषद् = कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् प्रश्न = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् मुण्डक = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् माण्डुक्य = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् तैतरीय = कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ऐतरेय = ऋग् वेद, मुख्य उपनिषद् छान्दोग्य = साम वेद, मुख्य उपनिषद् बृहदारण्यक उपनिषद (१०) = शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपिनषद्कैवल्य = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् जाबाल(यजुर्वेद) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् श्वेताश्वतर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् हंस = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् आरुणेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् गर्भ = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् नारायण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् परमहंस = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् अमृत-बिन्दु (२०) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अमृत-नाद = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अथर्व-शिर = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् अथर्व-शिख

= अथर्व वेद, शैव उपनिषद् मैत्रायिण = साम वेद, सामान्य उपनिषद् कौषीि्ताक = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् बृहज्जाबाल = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् नृसिंहतापनी = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कालाग्निरुद्र = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् मैत्रेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सुबाल (३०) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् क्षुरिक = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् मान्त्रिक = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् सर्व-सार = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् निरालम्ब = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् शुक-रहस्य = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् वज्र-सूिच = साम वेद, सामान्य उपनिषद् तेजो-बिन्दु = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् नाद-बिन्दु = ऋग् वेद, योग उपनिषद् ध्यानिबन्दु = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् ब्रह्मिवद्या (४०) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् योगतत्त्व = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् आत्मबोध = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् परिव्रात् (नारदपरिव्राजक) = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् त्रि-षिख = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् सीता = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् योगचूडामिण = साम वेद, योग उपनिषद् निर्वाण = ऋग् वेद, संन्यास उपनिषद् मण्डलब्राह्मण = शुक्ल यजुर्वेद, उपनिषद् दक्षिणामूर्ति = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् शरभ (५०) = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् स्कन्द = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् महानारायण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् अद्वयतारक = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् रामरहस्य = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् रामतापिण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् वासुदेव = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् मुद्गल = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् शाण्डिल्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पैंगल = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् भिक्षुक (६०) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् महत् = साम वेद, सामान्य उपनिषद् शारीरक = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् योगिशखा = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् तुरीयातीत = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् संन्यास =

साम वेद, संन्यास उपनिषद् परमहंस-परिव्राजक = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अक्षमालिक = ऋग् वेद, शैव पिनषद् अव्यक्त = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् एकाक्षर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अन्नपूर्ण (७०) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् सूर्य = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् अक्षि = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अध्यात्मा = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् कुण्डिक = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सावित्री = साम वेद, सामान्य उपनिषद् आत्मा = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् पाशुपत = अथर्व वेद, योग उपनिषद् परब्रह्म = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अवधूत = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् त्रिपुरातपिन (८०) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् देवि = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् त्रिपुर = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् कठरुद्र = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् भावन = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् रुद्र-हृदय = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् योग-कुण्डिलिन = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् भस्म = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् रुद्राक्ष = साम वेद, शैव उपनिषद् गणपित = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् दर्शन (९०) = साम वेद, योग उपनिषद् तारसार = शुक्ल यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् महावाक्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पञ्च-ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् प्राणाग्नि-होत्र = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् गोपाल-तपिण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कृष्ण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् याज्ञवल्क्य = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् वराह = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् शात्यायिन = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् हयग्रीव (१००) = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् दत्तात्रेय = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् गारुड = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् किल-सण्टारण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् जाबाल(सामवेद) = साम वेद, शैव उपनिषद् सौभाग्य = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् सरस्वती-रहस्य = कृष्ण यजुर्वेद, शाक्त

उपनिषद् बह्वृच = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् मुक्तिक (१०८) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् ||
ऋषि याग्य्वाल्लिक, उद्दल्का, ऐतिरिय, पिप्लाद, सनत कुमार, श्वेतकेतु, शांडिल्य, मनु, महर्षि नारद ने उप्निशादाक्य ज्ञान बाँटा है | जीव की विचार-क्षमता का आधार उपनिषद है| जो ज्ञान, विचार, सोच उपनिषद में है वह अन्य कहीं हो ही नहीं सकता| सभ्यता के आरंभिक दिनों में लिखा गया ग्रंथ विश्व के प्रत्येक देश, जाति, धर्म में उत्सुकता जगाता है |

उपनिषद के कुछ महत्व पूर्ण कथ्य उद्धृत हैं-

1. **ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।**
   मृत्योर्मा अमृतं गमय। ॐ शांति शांति शांतिः ॥
2. **अतिथि देवो भव:**
3. **सत्यमेव जयते**

वेदों के अन्तिम भाग या उच्चतम दर्शन को वेदान्त या उपनिषद् कहा जाता है| अब वेदान्त शब्द का प्रयोग उस विशेष दर्शन के लिए भी होता है जो उपनिषदों पर आधारित है| शंकर 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति 'सद्' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है मुक्त करना, पहुँचना या नष्ट करना| यह एक विशेष्य है जिसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग और क्विप् प्रत्यय लगे हैं| इसके अनुसार उपनिषद् का अर्थ होता है ब्रह्मज्ञान, जिसके द्वारा अज्ञान से मुक्ति मिलती है| जिन ग्रन्थों में ब्रह्मज्ञान की चर्चा रहती है, वे उपनिषद् कहलाते हैं| उपनिषदों में आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं दार्शनिक तर्क प्रणाली दोनों के दर्शन होते हैं| श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार परमेश्वर वेदों के गुह्य भाग उपनिषदों में निहित है (तद्वेद गुह्योपनिषत्सु गूढ़ं)| उपनिषद् ऐसा साहित्य है जो आदि काल से विकसित हो रहा है| भारतीय परम्परा में उपनिषदों

की संख्या एक सौ आठ मानी गयी है| शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहद् आरण्यक और श्वेताश्वतर- इन ग्यारह उपनिषदों का भाष्य किया है और ये ही सर्वसुलभ हैं|

१९ उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ पूर्णमदः से आरम्भ होता है |
३२ उपिनषद कृष्ण यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ सहनाववतु से आरम्भ होता है |
१६ उपनिषद् सामवेद से हैं और उनका शान्तिपाठ आप्यायन्तु से आरम्भ होता है |
३१ उपनिषद् अथर्ववेद से हैं और उनका शान्तिपाठ भद्रं कर्णेभिः से आरम्भ होता है |
१० उपनिषद् ऋग्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ वण्मे मनिस से आरम्भ होता है |

जल में स्पंदन
करता तरंगों का सृजन
आत्मा होती सरिता सम
निर्मल मृदु मृदु अनवरत
सरिता का मिलन-समर्पण सागर से
अंतिम बंध है,
ज्यूँ अबाध जीवन मलय की गति
उपवन की सुरभित सुगंध है|

उर तो शांत जलाशय

क्यों है तरंगित
कामना की भावना से है अस्थिर
आशा की कौन सी अभिलाषा
कर गयी आत्म-मंथन से परिचित

अंतर्मन का आत्मा से मिलन
समकालीन जीवन व्यवस्था है
मन एवं तन नही आधार अस्तित्व के
अस्तित्व तो अवस्था है; स्थिर चेतन आत्मा की
शक्ति-रूप,ज्ञान-रूप, आनंद-रूप आत्मा
अहैतुक, भौतिक गुणों से परे होती आत्मा,
तन के रथ पर शोभित
चंचल मन को संचालित करती रथवान सी आत्मा,

आत्मा होती अंतस प्रकाश मानव की
चिर परिचित प्राणों के स्पंदन की
अपने ही सुख से चिर चंचल मन की
शांत उर सरोवर की विचलित आत्मा,
परमात्मा-रूपी सागर में विलय को आतुर
जीवन सरिता आत्मा
मनुज है असत्य
मानव अस्तित्व है ब्रह्म
ब्रह्म-ज्योति से मिलन को व्याकुल आत्मा
======सुरेश चौधरी
(स्त्रोत- निज शोध एवं विभिन्न गूगल स्थित लेख)

॥ माण्डुक्य उपनिषद ॥

अथर्व वेदीय उपनिषद

माण्डुक्य उपनिषद-परिचय

उपनिषदों में सबसे छोटा मात्र १२ श्लोकों का यह उपनिषद मुख्यतः ॐ को परिभाषित करता है, ॐ शब्द हिन्दू विचारधारा का प्राण है, अन्य उपनिषद इसी लिए इसे विशेष स्थान देते हैं, संस्कृत में माण्डुक मेढक को कहते हैं, परन्तु ऐसा माना जाता है की यहाँ माण्डुक से अर्थ माण्डुक्य ऋषि से है, ब्रुहदार्यनक उपनिषद में भी ऋषि माण्डुक्य का उल्लेख है, यह उपनिषद बहुत ही महत्वपूर्ण है क्यूंकि यह गहराई से ॐ की समीक्षा करता है जो मुख्यतः तीन अक्षरों के मेल से बना है, अ उ म| जागृत अवस्था का प्रतीक अ है, उ स्वप्नावस्था का प्रतीक , म सुषुप्तावस्था का प्रतीक , यह एक चौथी अवस्था तुरीय अवस्था पर भी चर्चा करता है, यह अनदेखी अनसुनी अवस्था है, यह मौन या शून्य की प्रतिनिधि अवस्था है| तीन मात्राएँ अ उ म ब्रह्मा विष्णु महेश की भी प्रतीक हैं|श्वास लेते समय अ का उच्चारण करें एवं ब्रह्मा का ध्यान, उ का उच्चारण में विष्णु का एवं क को रोके रखें, श्वास छोड़ते हुए म का एवं शिव का ध्यान रहना चाहिए |

मांडूक्य उपनिषद का भाष्य

मांडूक्य उपनिषद, वेदों के आठ उपनिषदों में से एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो विशेष रूप से अद्वैत वेदांत के अध्ययन के लिए अद्वितीय है। यह अथर्ववेद का हिस्सा है और अपनी संक्षिप्तता (महज 12 मंत्र) के बावजूद अद्वैत वेदांत का सार प्रदान करता है। इसका मुख्य विषय ओंकार और आत्मा का स्वरूप है। शंकराचार्य ने इस उपनिषद पर विस्तारपूर्वक भाष्य लिखा है।

मांडूक्य उपनिषद की संरचना

1. **ओंकार का महत्त्व**

मांडूक्य उपनिषद में ओंकार को ब्रह्म का प्रतीक बताया गया है। यह कहता है कि ओंकार का प्रत्येक अक्षर (अ, उ, म) एक अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है।

अ (जाग्रत अवस्था): बाह्य जगत का अनुभव।

उ (स्वप्न अवस्था): सूक्ष्म जगत का अनुभव।

म (सुषुप्ति अवस्था): गहन निद्रा, जहाँ कोई भेद नहीं होता।

इन तीनों के परे तुरीय अवस्था है, जो अद्वैत सत्य है।

2. **चेतना की अवस्थाएँ**

जाग्रत (वैश्वानर): स्थूल शरीर का अनुभव।

स्वप्न (तैजस): मानसिक और सूक्ष्म अनुभव।

सुषुप्ति (प्राज्ञ): पूर्ण विश्रांति, जहाँ न कोई इच्छा होती है और न कोई कर्म।

तुरीय (चतुर्थ): आत्मा का वास्तविक स्वरूप, जो निर्लेप, निराकार, और शाश्वत है।

3. अद्वैत वेदांत का सार

यह उपनिषद कहता है कि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं। जीव और जगत का भेद केवल अज्ञान के कारण है। जब यह अज्ञान समाप्त होता है, तो आत्मा अपनी मूल अवस्था में अर्थात ब्रह्म में स्थित हो जाती है।

भाष्य के मुख्य बिंदु

1. ओंकार की साधना

ओंकार की ध्वनि के माध्यम से साधक अपनी चेतना को तुरीय अवस्था तक ले जा सकता है।

2. **जगत मिथ्या और ब्रह्म सत्य**
मांडूक्य उपनिषद के अनुसार, संसार माया का खेल है और आत्मा ही एकमात्र सत्य है।
3. **आत्मा का अनुभव**
आत्मा कोई वस्तु नहीं है, जिसे देखा या छुआ जा सके। यह अनुभव की विषय-वस्तु नहीं, बल्कि स्वयं अनुभवकर्ता है।

शंकराचार्य का योगदान
शंकराचार्य ने अपने भाष्य में इस उपनिषद के गूढ़ अर्थ को स्पष्ट किया। उन्होंने "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ही ब्रह्म हूँ) का सिद्धांत इसी उपनिषद के आधार पर प्रचारित किया।

प्रासंगिकता
मांडूक्य उपनिषद आज भी ध्यान, साधना, और आत्मा की खोज में लगे साधकों के लिए पथप्रदर्शक है।
यह हमें यह समझाने में मदद करता है कि जीवन का परम लक्ष्य आत्मा और ब्रह्म का एकत्व अनुभव करना है।
संक्षेप में, मांडूक्य उपनिषद एक ऐसा दार्शनिक और आध्यात्मिक ग्रंथ है, जो ओंकार के माध्यम से आत्मा की खोज का मार्ग दिखाता है। इसके अध्ययन से जीवन की गहनतम सच्चाईयों का अनुभव किया जा सकता है।

<u>मांडूक्य उपनिषद का महत्व</u>
उपनिषदों में सबसे छोटा उपनिषद है माण्डुक्य, कहते हैं बंगाल में जो मिर्ची जितनी छोटी होती है उसमे उतनी ही झाल होती है, ठीक वैसे ही

माण्डुक्य के मात्र १२ श्लोक समूचे वेदांत के सार हैं खास कर उसका सातवाँ श्लोक

माण्डुक्य उपनिषद
नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।
अदृष्टमव्यवहार्यम ग्राह्यमलक्षणं अचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म
प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैत
चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥

हे देव !
जो ज्ञान बाहर है अन्दर नही वह ज्ञान
जो न ज्ञान स्वरुप वह ज्ञाता नही न ही विद्वान्
जो दृश्य नही, जो श्रुति नही, जो ग्राह्य नही,
न जो ज्ञात वह है प्रपंच|
(मेरी पुस्तक वेद से वेदांत तक से लिया हुआ)

अथार्थ तुम जब तक यह नही पहचानोगे की तुम दृश्य नही प्रेक्षक हो तब तक यह भ्रम रहेगा तत्वमसि तुम क्या हो इसे पहचानो एवं सत्यता को जानो.

एक कथा याद आ रही है जो स्वामी सर्व प्रियानंद जी के प्रवचन में सुनी थी, चूँकि वे अंग्रेजी में आख्यान देते हैं परन्तु मैं उसका हिंदी अनुवाद दे रहा हूँ|

वे हिमालय की गोद में प्रवास में थे एवं एक बार घुप अँधेरा था आँखों के आगे हाथ घुमाओ तो भी यह पता नही चलता था कि हाथ का अस्तित्व कहाँ है जबकि वह था, तभी एक संत ने राजा जंनक की कथा सुनाई, जो इस प्रकार थी|

जनक के साम्राज्य को दुश्मनों ने विजित कर लिया वे देश छोड़ कर निकल पड़े और पड़ोस के देश में क्षद्म वेश में चले गए क्षुदा की पीड़ा से त्रस्त थे तभी एक लंगर देखा और वे भी लाइन में लग गए, उनका क्रम आता तब तक भोजन समाप्त हो गया और वे भूखे मार्ग पर पड़ी धुल पर लोटने लगे तभी उन्होंने भोजन बांटने वाले से कहा क्या ज़रा भी नही है क्या, तो उसने बताया कि हाँ सब समाप्त हो गया बस हंडे की तली में थोडा मांड पडा है, वे उसे लेकर ही संतुष्ट थे और जैसे ही खाने लगे ऊपर से एक काक ने चोच मारी और कटोरा दूर धुल में लोटने लगा और वे उसके पीछे पीछे लौटने लगे, बहुत दर्दनाक दृश्य था|

इतने में ही राजा जनक की नींद खुल गयी और देखा की वे अपने राज भवन में आरामदेह पलंग पर हैं, उनकी तेज चीख की आवाज सुन रानी एवं अन्य सेवक दौड़े ए पूछा क्या हुआ, उनके मुख से एक ही बात निकली " यह सच कि वह सच"

राज दरबार में भी जो उनसे कुछ भी कहता तो बस वे कहते "यह सच कि वह सच" कोई भी उनकी समस्या सुलझाने में असमर्थ था क्यूंकि यथार्थ कोई जानता नही था, तभी अष्टावक्र जी का आगमन हुआ उनका अभिवादन आदि कुछ भी नही बस उनसे भी यही प्रश्न "यह सच कि वह सच "

अष्टवक्र ने जबाब दिया : राजन! यह सच है...जब आप धुल में लौट रहे थे तब आप सुप्त अवस्था में थे अतः वह सच था। जनक ने पूछा महाराज जब मैं नींद से उठा तब अपने को सुख वैभव में पाया क्या यह सच नहीं| अष्टवक्र जी ने कहा राजन यह भी सच है। तब राजन क्या यह भी सच वह भी सच, अष्टवक्र जी ने कहा राजन यह दृष्टि दोष है और अवस्था दोष है न वह सच न यह सच , सच मात्र तुम हो, पहचानो कि तुम कौन हो। जब हम जागृत अवस्था में होते हैं तो कुछ होते हैं जब हम सुप्त अवस्था में होते हैं तब कुछ और अनुभव करते हैं तब हम अर्ध जागृत रहते हैं, जब हम सुसुप्ति में होते हैं तो पूर्ण रूप से अपने तन से दूर हो जाते हैं, पर यह सब अवस्थाएं हैं परन्तु सत्य यह है की हम और हमारी आत्मा ही सत्य है| बाकि सब दृष्टि दोष है।

दृग दृश्य विवेक नामक तत्व विवेचना का एक महान स्त्रोत्र है जिसका पहला श्लोक है,

रूपं दृश्यम लोचनं दृक
तदृश्यम दृक्तु मानसं
दृश्या धीवृत्तय: साक्षी
दृगेव न तु दृश्यते ||

इसका अर्थ हुआ, दृश्य बन गया एवं आँखे दृष्टा(प्रेक्षक) हैं, वैसे ही आँखे जब दृश्य बन जाये तब मन दृष्टा होता है, मन जब दृश्य हो तो साक्षी दृष्टा होती हैं, परन्तु दृष्टा स्वयम कभी भी दृष्टा नही बनता.अथार्थ दिशी जो होते हैं वे साक्षात् हो यह मन पर निर्भर करता है की वह क्या देखता है अतः जो तुम हो वह ही सत्य है बाकी दृष्टा ही हैं. एक कथा याद आ गयी,

एक बार एक संत हिमालय से तपस्या कर हरिद्वार उतरे, उन्होंने कभी सांसारिक उपभोग की वस्तुएं देखी नही थी, गंगा के किनारे कैमरा लगाया गया, उसे एक अच्छे बड़े टीवी से कनेक्ट किया गया, उसमे जो दृश्य था बड़ा मनोहारी था जिसे आँखे देख रही थी गंगा की उठती लहरे, लहरों का कलकल करता नाद; मन बहुत प्रसन्न हुआ, उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि भाई मैं स्नान करूँगा आप इस यंत्र से एक लोटा गंगा का पानी ले आओ. परन्तु यह तो संभव नही था, यहाँ दृश्य भी था, आँखे भी थी, मन भी था, साक्ष्य भी था पर जो था वह वास्तव में नही था, उनके मुंख से माण्डुक्य उपनिषद का उपरोक्त श्लोक निकल पड़ा:

अर्थार्थ तुम जब तक यह नही पहचानोगे की तुम दृश्य नही प्रेक्षक हो तब तक यह भ्रम रहेगा | तत्वमसि तुम क्या हो इसे पहचानो एवं सत्यता को जानो.

ब्रह्मांड के बीच संबंध, विषय और वस्तु के रूप में समझाया जा सकता है दूसरे शब्दों में यह पुरुष (आत्मा) और प्रकृति (मामले) के बीच संबंध है। आम आदमी की भाषा में, यह एक व्यक्ति और बाहरी वस्तुओं के बीच संबंध के रूप में समझाया जा सकता है। अद्वैत दर्शन में, इस संबंध को "द्रष्टा(प्रेक्षक) और दृश्य" कहा जाता है। इसे "पर्यवेक्षक और मनाया गया", "कथित और कथित", और इसी तरह के रूप में भी कहा जा सकता है। यह अवधारणा अद्वैत वेदांत का मूल है जब यह अवधारणा स्पष्ट होती है, तो अध्यात्म के मूल को समझने में सहायक होती है और मांडूक्य उपनिषद इसमे सहायक है।

|| शान्ति पाठ ||

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।
ॐ शांतिः । शांतिः । शांतिः ॥

हे स्वामी !
इतनी कृपा कीजिये,
कानो से मंगल सुनूँ, आँखों से देखूँ मंगल ही,
आपकी पूजा करूँ तो करूँ मंगल हेतु,
आप के ही लिए बनाई यह सुन्दर काया
आप ही के लिए बनाये ये सुंदर अंग प्रत्यंग |
यश वृद्धि आपने दी,
पूषा, इंद्र, अनिष्टहर्ता गरुड़,
सब आप ही के रूप,
बृहस्पति, एवं सर्व धातु अनिष्ट का हरण करें,
आपकी कृपा पाता रहूँ,
मन में वचन में आप समाये रहे ||
आप जीवन में शांति प्रदान करें ,
ॐ शांति शांति शांति ||

अनुवाद

ॐ: यह ओंकार शांति और ब्रह्म के प्रतीक के रूप में यहाँ स्थित है।

1 **.भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं: शुभ और कल्याणकारी।**
कर्णेभिः: कानों से, **शृणुयाम:** हम सुनें। **देवाः**: देवता (यहाँ देवताएँ या हम, जो ब्रह्मा या परमात्मा की उपासना करते हैं)।
यह वाक्य देवताओं से प्रार्थना है कि हम अपने कानों से शुभ और कल्याणकारी बातें सुनें। यह शांति की कामना है, ताकि हम ज्ञान, प्रेम, और समृद्धि की ओर अग्रसर हो सकें।
2. **भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः**
पश्येम: हम देखें। **आक्षिभिः**: आँखों से। **यजत्राः**: यज्ञ करनेवाले (अर्चना करनेवाले)।
यह वाक्य आग्रह करता है कि हम अपनी आँखों से शुभ और भले कार्यों को देखें, ताकि हमारा जीवन देवत्व और समृद्धि से परिपूर्ण हो।
3. **स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः**
स्थिरैरङ्गैः: दृढ़ अंगों से। **तुष्टुवांसः**: स्तुति करते हुए (भजन या उपासना करते हुए)। **तनूभिः**: शरीरों से। **व्यशेम**: हम व्याप्त करें (हम इसे फैलाएं)। **देवहितं:** देवों का कल्याण। **यदायुः**: यह जीवन (आयु)।
यह वाक्य आग्रह करता है कि हम अपने शरीर और जीवन के प्रत्येक अंग से देवताओं की स्तुति करें, ताकि हम अपना जीवन भगवान के कल्याण में समर्पित करें और यह जीवन उत्तम हो।
4. **स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः**
स्वस्ति: शुभ और कल्याणकारी। **न:** न (यहाँ पर "न" का मतलब है "हम" या "हमारे लिए"।) **इन्द्रो**: इंद्र (वह देवता जो शक्ति और साम्राज्य के प्रतीक हैं)। **वृद्धश्रवाः**: जिनका नाम सम्मानित और प्रसिद्ध है।
यह वाक्य प्रार्थना है कि इंद्र देवता हमारे जीवन में शुभता और समृद्धि लाएं।
5. **स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः**

पूषा: पूषा (देवता जो समृद्धि और पोषण के प्रतीक हैं)। **विश्ववेदा**:: जो विश्व के ज्ञानी हैं।
यह वाक्य प्रार्थना है कि पूषा देवता हमें ज्ञान और समृद्धि दें, ताकि हमारा जीवन समृद्ध और संतुलित हो।

6. **स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः**

तार्क्ष्यः: तार्क्ष्य (हवा या वायु का देवता, जो समृद्धि और स्वास्थ्य का प्रतीक है)। **अरिष्टनेमिः**: अरिष्ट (विपत्ति, बाधा या बुराई) का नाश करनेवाला।
यह वाक्य प्रार्थना है कि तार्क्ष्य देवता हमारे जीवन से सभी विपत्तियों और बुराइयों का नाश करें।

7. **स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु**

बृहस्पति: बृहस्पति (वह देवता जो ज्ञान, बुद्धि और विद्या के प्रतीक हैं)। **दधातु:** वह प्रदान करें।
यह वाक्य प्रार्थना है कि बृहस्पति देवता हमें बुद्धि, ज्ञान और शुभता प्रदान करें।

8. **ॐ शांतिः । शांतिः । शांतिः ॥**

यह शांति की तीन गुना प्रार्थना है: शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शांति की कामना की जाती है।

भाष्य और व्याख्या

शांति पाठ एक अत्यंत महत्वपूर्ण और शुद्ध मंत्र है जिसे विशेष रूप से शांति, सुख और समृद्धि की कामना के लिए उपयोग किया जाता है। यह श्लोक हमें न केवल शांति की ओर अग्रसर करता है, बल्कि यह भी प्रकट करता है कि जीवन के विभिन्न पहलुओं में शुभता की आवश्यकता है।

1. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम - यह प्रार्थना है कि हमारे कानों से हम केवल शुभ, सुखकारी और ज्ञानवर्धक बातें सुनें।
2. भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः - यह प्रार्थना है कि हमारी आँखों से केवल शुभ और कल्याणकारी दृश्य ही हमें देखने को मिलें।
3. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः - यह प्रार्थना इंद्र देवता से है कि वे हमारे जीवन में शक्ति और समृद्धि लाएं।
4. स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः - यह प्रार्थना पूषा देवता से है कि वे हमें ज्ञान और समृद्धि प्रदान करें।
5. स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः - यह प्रार्थना है कि हम विपत्तियों और परेशानियों से मुक्त हों।
6. स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु - यह प्रार्थना बृहस्पति देवता से है कि वे हमें ज्ञान और बुद्धि प्रदान करें।
7. ॐ शांतिः। शांतिः। शांतिः॥ - शांति की यह तीन गुना प्रार्थना शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शांति की प्राप्ति के लिए होती है।

निष्कर्ष

यह शांति पाठ समग्र शांति की प्राप्ति के लिए है, जिसमें विभिन्न देवताओं से शुभता, ज्ञान, समृद्धि और शांति की कामना की जाती है। इसका उद्देश्य केवल बाहरी शांति ही नहीं, बल्कि आत्मिक और मानसिक शांति को भी प्राप्त करना है, ताकि हम अपने जीवन को समृद्ध और संतुलित बना सकें।

<u>मन्त्र =१</u>

ॐ इत्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं
भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव

यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥१॥

"ॐ ही अक्षर महान,
सर्व सृष्टि का है प्रमाण।
भूत, भव और भविष्य,
इनका आधार यह निश्छल।
त्रिकालातीत परम सत्य, ओंकार सदा अनंत।"

अनुवाद

"ॐ" ही वह अक्षर है जो सब कुछ है। इसके अर्थ की व्याख्या इस प्रकार है:
जो भूतकाल, वर्तमान और भविष्य है, वह सब "ॐ" ही है।
जो कुछ भी इन तीनों समयों से परे (त्रिकालातीत) है, वह भी "ॐ" ही है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. ॐ का सार्वभौमिक महत्व:
यह श्लोक "ॐ" को संपूर्ण सृष्टि का मूल रूप बताता है।
"ॐ" केवल एक ध्वनि नहीं है, बल्कि यह अस्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है।
यह सृष्टि के तीनों आयाम (भूत, वर्तमान, भविष्य) और इनके पार भी व्याप्त है।

2. त्रिकाल की अवधारणा:
"भूतं" (भूतकाल): अतीत की घटनाएं और सृष्टि का प्रारंभ।
"भवद्" (वर्तमान): जो अभी घटित हो रहा है।

"भविष्यद्" (भविष्य): जो आने वाला है।
"ॐ" इन सभी का आधार है और इनसे परे भी है।

3. त्रिकालातीत:

"त्रिकालातीत" का अर्थ है वह जो समय और स्थान की सीमा से परे है।
यह परम सत्य (ब्रह्म) की ओर इशारा करता है, जो अनंत और अपरिवर्तनीय है।

4. ॐ का प्रतीकात्मक महत्व:

"ॐ" को तीन अक्षरों (अ + उ + म) में विभाजित किया जाता है:
अ: सृजन (ब्रह्मा का प्रतीक)।
उ: पालन (विष्णु का प्रतीक)।
म: संहार (महेश का प्रतीक)।
"ॐ" का उच्चारण करते समय एक गूंज उत्पन्न होती है, जो आत्मा और परमात्मा के बीच एक सेतु का कार्य करती है।

5. आध्यात्मिक संदेश:

यह श्लोक हमें बताता है कि "ॐ" वह अनहद नाद है जो चेतना, ब्रह्मांड, और परमात्मा को एक सूत्र में पिरोता है।
ध्यान और साधना में "ॐ" का जप करने से व्यक्ति को त्रिकाल का अनुभव और आत्मसाक्षात्कार होता है।

निष्कर्ष

यह श्लोक "ॐ" की सार्वभौमिकता और आध्यात्मिक महत्व को स्पष्ट करता है। यह हमें सिखाता है कि "

तत्वज्ञान:

ओंकार केवल भौतिक संसार का नहीं, अपितु आध्यात्मिक सत्य का भी द्योतक है।
यह परम ब्रह्म (सत्य), जीवात्मा (सांसारिक आत्मा), और जगत (सृष्टि) का संगम है।

मन्त्र =२

सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥२॥

" सर्व सृष्टि ब्रह्म स्वरूप,
आत्मा ब्रह्म का ही रूप।
चतुष्पात है आत्मा ज्ञानी, जाग्रत,
स्वप्न, निद्रा गहरी।
तुरीय है सत्य का प्रमाण,
वहीं है ब्रह्म का स्थान।"

अनुवाद
यह सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म (परम सत्य) है।
यह आत्मा (अहं) भी ब्रह्म है।
यह आत्मा, जिसे "ब्रह्म" कहा जाता है, चतुष्पात् (चार अवस्थाओं वाला) है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **सर्वं ह्येतद् ब्रह्म:**

यहाँ उपनिषद यह स्पष्ट करता है कि ब्रह्म (परम सत्य) के बिना कुछ भी अस्तित्व में नहीं है।
समस्त दृश्य और अदृश्य सृष्टि ब्रह्म का ही प्रकट रूप है।

2. **अहं ब्रह्मास्मि** (आत्मा और ब्रह्म का एकत्व):
उपनिषदों का यह प्रमुख सिद्धांत है कि आत्मा और ब्रह्म अलग नहीं हैं।
"यह आत्मा (जो हमारे भीतर है) स्वयं ब्रह्म है।"
यह आत्मा व्यक्तिगत चेतना (जीव) और ब्रह्मांडीय चेतना (ब्रह्म) के बीच संबंध को स्थापित करता है।

3. चतुष्पात् (चार अवस्थाएँ):
आत्मा को चार चरणों में विभाजित किया गया है, जो व्यक्तित्व और चेतना के स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं:

I. **जाग्रत (वैश्वानर):**
यह वह अवस्था है जिसमें आत्मा जागृत है और इंद्रियों के माध्यम से बाह्य संसार का अनुभव करती है।
इसे "वैश्वानर" कहा जाता है।

II. **स्वप्न (तैजस):**
यह वह अवस्था है जिसमें आत्मा स्वप्न देखती है और मन में कल्पनाओं का अनुभव करती है।
इसे "तैजस" कहा जाता है।

III. सुषुप्ति (प्राज्ञ):
यह गहरी नींद की अवस्था है, जिसमें आत्मा पूर्ण विश्राम में होती है और कोई जागरूकता नहीं होती।
इसे "प्राज्ञ" कहा जाता है।

IV. तुरीय (चौथी अवस्था):

यह सबसे उच्च अवस्था है, जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे है।
यह ब्रह्म का साक्षात अनुभव है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म एक हो जाते हैं।

4. आध्यात्मिक संदेश:
यह श्लोक व्यक्ति को आत्मा की गहराई में जाने का आह्वान करता है।
आत्मा और ब्रह्म का एकत्व समझने के लिए साधना और आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है।
यह चेतना की विभिन्न अवस्थाओं को पहचानने और तुरीय अवस्था तक पहुँचने का

निष्कर्ष
यह श्लोक अद्वैत वेदांत का मर्म प्रस्तुत करता है। आत्मा और ब्रह्म के बीच कोई भेद नहीं है; वे एक ही परम सत्य के दो पहलू हैं। आत्मा की चार अवस्थाओं को समझकर और तुरीय में प्रवेश कर, व्यक्ति मोक्ष और ब्रह्म का अनुभव कर सकता है।

तत्वज्ञान:
आत्मा का चतुष्पाद स्वरूप अनुभव और ज्ञान के स्तरों को प्रकट करता है। आत्मा और ब्रह्म का एकत्व अद्वैत वेदांत का मूलभूत सिद्धांत है।

<u>मन्त्र =३</u>

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः

स्थूल भुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥

यह देह जगत है, ज्ञान से आपने किया व्याप्त,
सात लोक अंग इसके भोक्ता मनुज बनाया,
उन्नीस मुख से समस्त जग धारण किया,
आप ही प्रथम पाद हो विद्वतजनो ने कहा |

अनुवाद

जागरितस्थान: जाग्रत अवस्था में आत्मा बाह्य जगत का अनुभव करती है।
बहिष्प्रज्ञः: इस अवस्था में चेतना बाह्य वस्तुओं और इंद्रिय विषयों पर केंद्रित होती है।
सप्ताङ्ग: यह अवस्था सात अंगों से युक्त होती है।
एकोनविंशतिमुखः: इसमें 19 मुख (प्रकाशन के साधन) होते हैं।
स्थूलभुक्: यह अवस्था स्थूल (संसार के स्थूल पदार्थों) का भोग करती है।
वैश्वानर: इसे वैश्वानर (सार्वभौमिक आत्मा) कहा जाता है।
यह आत्मा का प्रथम पाद (पहला चरण) है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **जागरितस्थान (जाग्रत अवस्था)**

यह आत्मा की पहली अवस्था है, जिसमें व्यक्ति जागृत रहता है और इंद्रियों के माध्यम से बाह्य जगत का अनुभव करता है।
यह अवस्था मन और शरीर के सबसे स्पष्ट संपर्क की स्थिति है।

2. बहिष्प्रज्ञ (बाह्य जागरूकता)

"बहिष्प्रज्ञ" का अर्थ है बाह्य वस्तुओं के प्रति जागरूक होना।

इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान बाहरी अनुभवों, जैसे दृश्य, श्रव्य, गंध, स्वाद, और स्पर्श पर केंद्रित होता है।

3. **सप्ताङ्ग (सात अंग)**

वैश्वानर को सात अंगों से युक्त बताया गया है। ये सात अंग संपूर्ण सृष्टि का प्रतीक हैं:

I. आकाश (आकाश रूप शरीर)।
II. वायु (श्वास रूप शरीर)।
III. अग्नि (उजाले रूप शरीर)।
IV. जल (तरल रूप शरीर)।
V. पृथ्वी (स्थूल शरीर)।
VI. आत्मा (चेतना)।
VII. मन (विचारों का स्रोत)।

4. एकोनविंशतिमुख (उन्नीस मुख)

ये 19 मुख वे साधन हैं, जिनके माध्यम से आत्मा बाह्य जगत का अनुभव करती है।

I. पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (देखना, सुनना, सूंघना, चखना, और स्पर्श करना)।
II. पाँच कर्मेन्द्रियाँ (बोलना, चलना, ग्रहण करना, उत्सर्जन करना, और प्रजनन करना)।
III. पाँच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान)।
IV. मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार (अंतःकरण चतुष्टय)।
V. स्थूलभुक (स्थूल भोग)
VI. इस अवस्था में आत्मा स्थूल जगत के सुख-दुःख और अनुभवों को भोगती है।
VII. इसमें बाहरी विषयों के प्रति आसक्ति अधिक होती है।

VIII. वैश्वानर (सार्वभौमिक आत्मा)

IX. "वैश्वानर" का अर्थ है वह आत्मा जो सभी में समान रूप से विद्यमान है।

X. यह जाग्रत अवस्था में संपूर्ण जगत का भोग करने वाली चेतना है।

XI. प्रथम पाद (पहला चरण)

XII. जाग्रत अवस्था को आत्मा का पहला चरण कहा गया है।

XIII. यह चरण स्थूल जगत से जुड़ा होता है और आत्मा के चेतना-क्रम की आधारशिला है।

आध्यात्मिक संदेश

यह श्लोक समझाता है कि आत्मा की जाग्रत अवस्था में चेतना स्थूल जगत पर केंद्रित होती है।

यह हमें बाहरी अनुभवों की सीमित प्रकृति का बोध कराता है।

आत्मा को स्थूल से परे सूक्ष्म और तुरीय अवस्था की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

निष्कर्ष

यह श्लोक आत्मा की जाग्रत अवस्था की विशिष्टताओं को दर्शाता है। आत्मा जब बाह्य जगत में लिप्त होती है, तब वह "वैश्वानर" कहलाती है। यह अवस्था स्थूल अनुभवों से घिरी होती है, लेकिन आत्मा की यात्रा यहीं समाप्त नहीं होती; उसे सूक्ष्म और परम चेतना (तुरीय) तक पहुँचना होता है।

तत्वज्ञान:

जाग्रत अवस्था में आत्मा के अनुभव सीमित और बाह्य होते हैं।

यह अवस्था आत्मा का केवल एक पक्ष है; पूर्ण सत्य तुरीय अवस्था में निहित है।

मन्त्र =४

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञाः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ॥४॥

"स्वप्न में अंतर्मुख चेतना जागे,
सूक्ष्म भोग के तेज से लागे।
सप्त अंग और उन्नीस द्वार,
तैजस आत्मा सूक्ष्म व्यवहार।"

अनुवाद

स्वप्नस्थान: आत्मा की वह अवस्था जिसमें यह स्वप्न देखती है।
अन्तः प्रज्ञाः: इस अवस्था में चेतना अंतर्मुखी होती है और बाह्य जगत से अलग होकर मन के भीतर के अनुभवों पर केंद्रित होती है।
सप्ताङ्ग: यह अवस्था भी सात अंगों से युक्त है।
एकोनविंशतिमुखः: इसमें भी 19 मुख या साधन होते हैं, जो इंद्रियों और मन के रूप में कार्य करते हैं।
प्रविविक्तभुक्: यह अवस्था सूक्ष्म अनुभवों का भोग करती है।
तैजसः: इसे "तैजस" (सूक्ष्म चेतना का अनुभव करने वाली आत्मा) कहा जाता है।
यह आत्मा का द्वितीय पाद (दूसरा चरण) है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **स्वप्नस्थान** (स्वप्न अवस्था)

यह आत्मा की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति सो रहा होता है, लेकिन मन सक्रिय रहता है और कल्पनाओं व स्मृतियों के आधार पर स्वप्नों का निर्माण करता है।

इस अवस्था में आत्मा बाहरी इंद्रियों से कट जाती है और अंतर्मुखी हो जाती है।

2. **अन्तः प्रज्ञा** (अंतर्मुखी चेतना)

"अन्तः प्रज्ञा" का अर्थ है भीतर की ओर केंद्रित चेतना।

स्वप्न अवस्था में बाहरी इंद्रियों का उपयोग नहीं होता; केवल मन और उसकी कल्पनाएँ सक्रिय रहती हैं।

यह चेतना व्यक्ति के गहरे विचारों, भावनाओं, और अवचेतन मन की गतिविधियों का अनुभव कराती है।

3. **सप्ताङ्ग (सात अंग)**

स्वप्न अवस्था के सात अंग भी वही हैं जो जाग्रत अवस्था में थे:

I. आकाश (आकाश तत्व)।
II. वायु (वायु तत्व)।
III. अग्नि (अग्नि तत्व)।
IV. जल (जल तत्व)।
V. पृथ्वी (पृथ्वी तत्व)।
VI. आत्मा।
VII. मन।

ये सात अंग सूक्ष्म स्तर पर स्वप्न अवस्था में भी कार्य करते हैं।

4. **एकोनविंशतिमुख** (उन्नीस मुख)

जैसे जाग्रत अवस्था में 19 मुख होते हैं, वैसे ही स्वप्न अवस्था में भी 19 साधन होते हैं:

I. पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।
II. पाँच कर्मेन्द्रियाँ।
III. पाँच प्राण।
IV. मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार।

अंतर यह है कि स्वप्न अवस्था में ये मुख बाहरी वस्तुओं पर नहीं, बल्कि आंतरिक अनुभवों पर केंद्रित रहते हैं।

5. **प्रविविक्तभुक (सूक्ष्म भोग)**

"प्रविविक्तभुक" का अर्थ है सूक्ष्म भोग करना।

स्वप्न अवस्था में व्यक्ति भौतिक रूप से कुछ भी नहीं करता, लेकिन मानसिक और सूक्ष्म स्तर पर सुख-दुःख का अनुभव करता है।

यह भोग बाहरी जगत से जुड़ा नहीं होता, बल्कि व्यक्ति के अपने अवचेतन मन की गतिविधियों का परिणाम होता है।

6. **तैजस (सूक्ष्म चेतना)**

"तैजस" वह आत्मा है जो स्वप्न अवस्था में सूक्ष्म रूप से सक्रिय रहती है।

यह अवस्था ऊर्जा और प्रकाश (तेज) से जुड़ी है, क्योंकि स्वप्न में दृश्य और विचार मन की प्रकाशना से उत्पन्न होते हैं।

7. **द्वितीय पाद (दूसरा चरण)**

यह आत्मा का दूसरा चरण है, जो जाग्रत अवस्था से अधिक सूक्ष्म और आंतरिक है।

यह व्यक्ति के अवचेतन मन और सूक्ष्म चेतना को प्रकट करता है।

आध्यात्मिक संदेश

स्वप्न अवस्था आत्मा के सूक्ष्म स्वरूप को समझने का अवसर देती है।

यह दर्शाती है कि चेतना केवल बाहरी संसार तक सीमित नहीं है; यह भीतर के संसार का भी अनुभव कर सकती है।
स्वप्न अवस्था अंतर्मुखी ध्यान और आत्मनिरीक्षण का प्रतीक है, जो तुरीय अवस्था (चौथी अवस्था) की ओर जाने का मार्ग खोलती है।

निष्कर्ष
यह श्लोक आत्मा की स्वप्न अवस्था को गहराई से समझाने का प्रयास करता है। इसमें बताया गया है कि स्वप्न अवस्था बाहरी अनुभवों से हटकर अंतर्मन के सूक्ष्म अनुभवों का क्षेत्र है। "तैजस" के रूप में आत्मा यहाँ अधिक सूक्ष्म और गहन चेतना का अनुभव करती है, जो आत्मा की गहरी समझ और तुरीय अवस्था की ओर ले जाती है।

तत्वज्ञान:
स्वप्न अवस्था यह दर्शाती है कि आत्मा न केवल बाहरी जगत का अनुभव करती है, बल्कि आंतरिक सूक्ष्म जगत में भी प्रवेश करती है।
यह अवस्था जाग्रत अवस्था से भिन्न है, परंतु यह भी पूर्ण सत्य का एक हिस्सा मात्र है।

मन्त्र =५

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते
न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम् ।
सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो
ह्यानन्दभुक् चेतो मुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥

"जहाँ न स्वप्न, न कामना होती,
गहन निद्रा में आत्मा सोती।
एकीभूत, प्रज्ञानघन,
आनंद से भरता मन।
प्राज्ञ रूप तृतीय चरण,
पूर्ण चेतना का अभिनंदन।"

अनुवाद

यत्र सुप्तो: जहाँ व्यक्ति गहरी नींद में सोता है।, न कञ्चन कामं कामयते: न किसी कामना की इच्छा करता है।, न कञ्चन स्वप्नं पश्यति: न किसी स्वप्न का अनुभव करता है।, तत् सुषुप्तम्: वह अवस्था सुषुप्ति (गहरी निद्रा) है।, सुषुप्तस्थान: यह आत्मा की सुषुप्ति (गहरी नींद) की अवस्था है।, एकीभूतः: जहाँ सब कुछ एकीकृत हो जाता है।, प्रज्ञानघन: यह केवल चेतना का समेकित रूप है।, आनन्दमयः: यह आनंद से परिपूर्ण है।, आनन्दभुक्: यह केवल आनंद का भोग करता है।, चेतोमुखः: इस अवस्था में चेतना का द्वार प्राज्ञ (गहरी चेतना) है।, प्राज्ञः तृतीयः पादः: इसे "प्राज्ञ" कहा जाता है और यह आत्मा का तीसरा चरण है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **सुषुप्ति (गहरी नींद की अवस्था)**

सुषुप्ति वह अवस्था है जब व्यक्ति गहरी नींद में होता है और बाहरी जगत, स्वप्न, और इच्छाओं से पूर्णतया मुक्त होता है।
इस अवस्था में मन, इंद्रियाँ और स्वप्न सभी विलीन हो जाते हैं।

2. कामनाओं और स्वप्नों का अभाव

इस अवस्था में व्यक्ति न तो कामनाएँ करता है और न ही किसी प्रकार के स्वप्न देखता है।

यह एक गहन विश्राम की स्थिति है, जहाँ केवल आत्मा का अस्तित्व बना रहता है।

3. एकीभूत (एकता की स्थिति)

सुषुप्ति में चेतना "एकीभूत" हो जाती है, अर्थात् यह एकाग्र और अविभाजित रहती है।

सभी बाहरी और आंतरिक भेद समाप्त हो जाते हैं।

4. प्रज्ञानघन (समेकित चेतना)

"प्रज्ञानघन" का अर्थ है समेकित और गहन चेतना।

इस अवस्था में आत्मा केवल "चेतना" के रूप में होती है, जो अन्य किसी बाहरी या आंतरिक गतिविधि से प्रभावित नहीं होती।

5. आनंदमय और आनंदभुक (आनंद का भोग)

सुषुप्ति में आत्मा "आनंदमय" होती है, क्योंकि यह बाहरी संसार और इच्छाओं के बंधन से मुक्त होती है। यह अवस्था अद्वैत आनंद का अनुभव कराती है, जिसे "आनंदभुक" कहा गया है।

6. प्राज्ञ (गहरी चेतना)

इस अवस्था में आत्मा को "प्राज्ञ" कहा जाता है, जिसका अर्थ है "पूर्ण चेतना"।

यह आत्मा की तीसरी अवस्था है, जहाँ वह अपने सूक्ष्म और स्थूल रूपों को पार कर जाती है।

आध्यात्मिक संदेश

सुषुप्ति अवस्था आत्मा की पूर्ण विश्राम और आनंद की अवस्था है। यह हमें चेतना के गहरे स्तर पर ले जाती है, जहाँ मन, स्वप्न और इच्छाएँ समाप्त

हो जाती हैं। यह अवस्था हमें अद्वैत ब्रह्म (एकता के सिद्धांत) का अनुभव करने का अवसर देती है।

निष्कर्ष

यह श्लोक आत्मा की सुषुप्ति अवस्था को गहराई से समझाने का प्रयास करता है। सुषुप्ति में आत्मा सभी गतिविधियों से मुक्त होकर विशुद्ध चेतना और आनंद का अनुभव करती है। इसे आत्मा का तीसरा चरण कहा गया है, जो व्यक्ति को तुरीय (चौथी अवस्था) की ओर ले जाने का मार्ग दिखाता है।

तत्वज्ञान:

सुषुप्ति अवस्था यह दर्शाती है कि आत्मा अपनी मूल स्थिति में पहुँचती है, लेकिन यह भी पूर्ण आत्मसाक्षात्कार नहीं है।
सुषुप्ति के आनंद का स्रोत आत्मा की अद्वैत स्थिति का क्षणिक अनुभव है।

मन्त्र =६

एष सर्वेश्वरः एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः
सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥

"सबका स्वामी, सबको जाने,
सबके भीतर यह वास करे।
सृष्टि का आधार यहीं,
प्रभव-लय में यह विलीन।"

अनुवाद

एष सर्वेश्वरः: यह (आत्मा) समस्त जगत का स्वामी है।, **एष सर्वज्ञ**: यह सब कुछ जानने वाला है।। **एषोऽन्तर्यामी:** यह सबके भीतर विद्यमान और सबका नियंत्रक है।, **एष योनिः** सर्वस्य: यह समस्त सृष्टि का मूल कारण और आधार है।, **प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्:** यह समस्त भूतों (जीवों) का जन्मस्थान और लयस्थान (विनाश का स्थान) है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **सर्वेश्वर (सर्वोच्च स्वामी)**

आत्मा को यहाँ "सर्वेश्वर" कहा गया है, जो समस्त ब्रह्मांड का स्वामी और आधारभूत तत्व है।

यह दर्शाता है कि आत्मा सभी भौतिक और आध्यात्मिक तत्वों का मूल है।

2. **सर्वज्ञ (सर्वज्ञानी)**

आत्मा को सर्वज्ञ कहा गया है, क्योंकि यह हर जीव, हर वस्तु, और हर विचार को जानने में सक्षम है।

यह सभी कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) का साक्षी है।

3. **अन्तर्यामी (भीतर का नियंत्रक)**

"अन्तर्यामी" का अर्थ है वह जो प्रत्येक प्राणी के भीतर निवास करता है और उसकी गतिविधियों को संचालित करता है।

आत्मा को सबके भीतर का परम तत्व कहा गया है, जो सबको नियंत्रित करता है।

4. **सृष्टि का आधार (योनिः सर्वस्य)**

यह आत्मा समस्त सृष्टि का मूल कारण है।

"योनिः" का तात्पर्य है वह स्रोत, जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है।

5. **प्रभव और अप्यय (सृष्टि और लय)**

आत्मा ही समस्त सृष्टि का आरंभ (प्रभव) है और वही अंत (अप्यय) भी। यह दर्शाता है कि आत्मा ही जन्म, जीवन और मृत्यु के चक्र का आधार है।

आध्यात्मिक संदेश

यह श्लोक आत्मा या ब्रह्म को समस्त सृष्टि का स्वामी, सृष्टिकर्ता और संचालक के रूप में स्थापित करता है।

आत्मा न केवल बाहरी जगत का स्वामी है, बल्कि प्रत्येक प्राणी के भीतर स्थित है, जो जीवन और मृत्यु दोनों का साक्षी है।

यह संदेश देता है कि आत्मा में सब कुछ निहित है और सब कुछ आत्मा में ही विलीन होता है।

निष्कर्ष

यह श्लोक आत्मा के सार्वभौमिक और अद्वितीय स्वरूप को स्पष्ट करता है। आत्मा को सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, और अन्तर्गत आधार बताया गया है। यह हमें यह समझने की प्रेरणा देता है कि आत्मा केवल व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टि और उसके चक्रों का मूल तत्व है। यह श्लोक हमें आत्मा की महत्ता को जानने और उसके साथ एकात्म होने का मार्ग दिखाता है।

तत्वज्ञान:

तुरीय अवस्था (चतुर्थ पाद) आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। यह न केवल सृष्टि से परे है, बल्कि सृष्टि का आधार भी है।

तुरीय वह स्थिति है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म का पूर्ण एकत्व स्थापित होता है।

मन्त्र ७

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।
अदृष्टमव्यवहार्यम ग्राह्यमलक्षणं अचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म
प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं
चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥

हे देव !
जो ज्ञान बाहर है अन्दर नही वह ज्ञान
जो न ज्ञान स्वरुप वह ज्ञाता नही न ही विद्वान्
जो दृश्य नही, जो श्रुति नही, जो ग्राह्य नही,
न जो ज्ञात वह है प्रपंच
मंगल शांति निराकार रूप में मिले जो रूप प्रभु आपका |

अनुवाद

न अन्तःप्रज्ञम्: न यह केवल भीतर की चेतना है। **न बहिष्प्रज्ञम्:** न यह केवल बाहरी चेतना है। **नोभयतःप्रज्ञम्:** न यह दोनों (भीतर और बाहर) का सम्मिलन है। **न प्रज्ञानघनम्:** न यह केवल समेकित चेतना है। **न प्रज्ञम्, न अप्रज्ञम्:** न यह जानने योग्य है और न ही अज्ञान के समान। **अदृष्टम्:** यह इंद्रियों के लिए अदृश्य है। **अव्यवहार्यम्:** यह सांसारिक व्यवहार में नहीं आता। **अग्राह्यम्:** यह समझने में अयोग्य है। **अलक्षणम्**: इसका कोई विशेष लक्षण नहीं है। **अचिन्त्यम्:** इसे मन से नहीं सोचा जा सकता। **अव्यपदेश्यम्:** इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। **एकात्म प्रत्ययसारम्:** यह एकमात्र आत्मा के अनुभव पर आधारित है। **प्रपञ्चोपशमम्:** यह सभी प्रपंच (भ्रम) को शांत करता है। **शान्तम्, शिवम्,**

अद्वैतम्: यह शांत, कल्याणकारी और अद्वैत (अविभाज्य) है। **चतुर्थं मन्यन्ते**: इसे "चतुर्थ" (चौथी अवस्था) कहा जाता है। **स आत्मा स विज्ञेयः**: यह आत्मा है, जिसे जानना चाहिए।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **तुरीय (चतुर्थ अवस्था)**

यह श्लोक आत्मा की चतुर्थ अवस्था (तुरीय) का वर्णन करता है।
यह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे है।
तुरीय अवस्था आत्मा का वास्तविक और परम स्वरूप है।

2. **वर्णनात्मक नकार (Neti-Neti)**

श्लोक में आत्मा को परिभाषित करने के लिए नकारात्मक तरीकों का उपयोग किया गया है (Neti-Neti अर्थात् "यह नहीं, वह नहीं")।
यह समझाने का प्रयास है कि आत्मा किसी भी सीमित अवधारणा, लक्षण, या अनुभव से परिभाषित नहीं हो सकती।

3. **अव्यक्त और अप्राप्य**

आत्मा अदृश्य, विचारातीत, और इंद्रियों से परे है।
इसे किसी व्यवहार, शब्द, या विचार से पकड़ना असंभव है।
यह सभी सांसारिक सीमाओं से मुक्त है।

4. एकात्म प्रत्ययसारम्

आत्मा केवल अनुभव से जानी जा सकती है।
इसका सार "एकत्व" में है, अर्थात् यह सभी का मूल तत्व और आधार है।

5. प्रपञ्चोपशमम्

आत्मा सभी प्रपंचों (द्वैत, भ्रम, और भौतिक जगत) को समाप्त करती है।
यह सृष्टि के मूल में विद्यमान अद्वैत सत्य है।

6. **शान्तम्, शिवम्, अद्वैतम्**

आत्मा शांत है क्योंकि यह सभी प्रकार के संघर्षों से परे है।
शिव (कल्याणकारी) है क्योंकि यह सभी प्राणियों का परम कल्याण करती है।
अद्वैत है क्योंकि यह विभाजन और द्वैत को समाप्त कर देती है।

आध्यात्मिक संदेश

यह श्लोक आत्मा के तुरीय स्वरूप को समझाने का प्रयास करता है।
आत्मा का ज्ञान न केवल बौद्धिक है, बल्कि इसका अनुभव ही इसका साक्षात्कार है।
आत्मा का स्वरूप ऐसा है, जिसे न देखा जा सकता है, न समझा जा सकता है, केवल अनुभव किया जा सकता है।
आत्मा के इस अद्वैत स्वरूप का अनुभव व्यक्ति को मोक्ष और शाश्वत शांति की ओर ले जाता है।

निष्कर्ष

यह श्लोक आत्मा के उस स्वरूप का वर्णन करता है, जो मन, इंद्रियों और भौतिक अनुभवों से परे है। तुरीय अवस्था आत्मा का शुद्ध और अद्वैत रूप है, जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे है। यह श्लोक आत्मा को जानने और उसके अद्वैत स्वरूप में एकत्व का अनुभव करने के लिए प्रेरित करता है।

तत्वज्ञान:

तुरीय अवस्था अद्वैत वेदांत का चरम सत्य है। यह अनुभवों और अवस्थाओं से परे वह स्थिति है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म का पूर्ण एकत्व होता है।

मन्त्र ८

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्करोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

"ॐ आत्मा का अक्षर महान,
तीन मात्रा से होता प्राण।
अ है जाग्रत, उ है स्वप्न,
म में गहरी नींद समर्पण।
मौन है तुरीय, शुद्ध अनंत,
ओंकार से होता ब्रह्म संग।"

अनुवाद

सः अयम् आत्मा: यह आत्मा ही है। **अक्षरम् ओङ्कारः**: आत्मा को "ओंकार" के अक्षर से व्यक्त किया गया है। **अधिमात्रं:** यह "ओंकार" मात्राओं में विभाजित है। **पादा मात्रा:** आत्मा के चार पाद (अवस्थाएँ) हैं, और ये चारों मात्राएँ (अ, उ, म) हैं। **मात्राश्च पादा:** मात्राएँ ही पाद हैं।
अकार उकारो मकार इति: ये तीन मात्राएँ "अ", "उ", और "म" हैं।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **ओंकार का महत्व**

ओंकार (ॐ) को आत्मा और ब्रह्मांडीय सत्य का प्रतीक माना गया है। यह आत्मा के चार पादों (अवस्थाओं) - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीय - को दर्शाता है।

2. **ओंकार के तीन भाग (अ, उ, म)**

अकार: यह जाग्रत अवस्था (वैश्वानर) का प्रतीक है, जिसमें व्यक्ति बाह्य जगत को अनुभव करता है।
उकार: यह स्वप्न अवस्था (तैजस) का प्रतीक है, जिसमें व्यक्ति अपने भीतर के विचारों और कल्पनाओं का अनुभव करता है।
मकार: यह सुषुप्ति अवस्था (प्राज्ञ) का प्रतीक है, जिसमें व्यक्ति गहरी नींद में होता है और बाहरी या आंतरिक अनुभव से मुक्त रहता है।

3. **चतुर्थ (तुरीय) अवस्था**

ओंकार के बाद का "शब्दातीत" या "अवर्णनीय मौन" तुरीय अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है।
तुरीय अवस्था सभी अनुभवों और अवस्थाओं से परे है और आत्मा का शुद्ध रूप है।

4. **ओंकार और आत्मा का संबंध**

श्लोक में बताया गया है कि ओंकार और आत्मा अभिन्न हैं।
ओंकार का उच्चारण आत्मा के साथ एकात्मता का अनुभव कराने का माध्यम है।

आध्यात्मिक संदेश

यह श्लोक आत्मा और ओंकार की एकरूपता को समझाता है।
ओंकार को सही ढंग से समझने और साधना के माध्यम से अनुभव करने पर आत्मा के चार पाद (जागरित, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) का साक्षात्कार होता है।
यह संदेश देता है कि ओंकार ब्रह्मांड और आत्मा की अद्वैतता का प्रतीक है।

निष्कर्ष

यह श्लोक आत्मा और ओंकार के चार पादों का संबंध स्पष्ट करता है। ओंकार को आत्मा का प्रतीक माना गया है, जो व्यक्ति को ब्रह्मांड के अद्वैत सत्य की ओर ले जाता है। अकार, उकार, और मकार के माध्यम से आत्मा की अवस्थाओं को समझना और तुरीय का अनुभव करना ही आत्मज्ञान का उद्देश्य है।

तत्वज्ञान:
ओंकार आत्मा और ब्रह्म का प्रतीक है।इसके तीन अक्षर (अ, उ, म) भौतिक और मानसिक अवस्थाओं को दर्शाते हैं, जबकि तुरीय अवस्था (चौथी) शुद्ध चेतना है।

मन्त्र – ९

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्
वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

प्रथम मात्रा अकार व्याप्त सर्व शब्दों में
यह आदि से व्याप्त प्रभु प्रथम रूप में,
इस भांति भोग वृद्धि प्राप्त हो,
इस श्रेष्ठ जग में उपासना करता रहूँ |

अनुवाद
जागरितस्थानः: जाग्रत अवस्था में स्थित। **वैश्वानरः**: इसे "वैश्वानर" कहा जाता है, जो बाहरी जगत का अनुभव करता है। **अकारः**: यह "अकार" (ॐ

का पहला अक्षर) का प्रतीक है। **प्रथमा मात्रा:** यह ओंकार की पहली मात्रा है। **आप्तेः**: यह पूर्णता का प्रतीक है। **आदिमत्त्वाद्:** यह सबका आरंभ है। **वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामान्:** जो इसे जान लेता है, वह सभी इच्छाओं को प्राप्त करता है। **आदिश्च भवति:** और वह सृजन का स्रोत बनता है। य एवं वेद: जो इसे समझता और जानता है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **जागृत अवस्था और वैश्वानर**

जागृत अवस्था में मनुष्य बाहरी जगत के अनुभव करता है।
इस अवस्था को "वैश्वानर" कहा गया है, जो इंद्रियों के माध्यम से जगत का अनुभव करता है।

2. **अकार और इसका अर्थ**

"अकार" ओंकार की पहली मात्रा है और यह जाग्रत अवस्था का प्रतीक है।
अकार को "आरंभ" और "पूर्णता" का प्रतीक माना गया है।
यह दर्शाता है कि सृष्टि का आरंभ "अ" से होता है, और यह सभी ध्वनियों का मूल है।

3. **सर्व इच्छाओं की पूर्ति**

जो व्यक्ति "अकार" के अर्थ को समझता है और जाग्रत अवस्था में ब्रह्म का अनुभव करता है, वह सभी इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है।
इस ज्ञान से व्यक्ति अपने बाहरी और आंतरिक संसार में पूर्णता और संतोष प्राप्त करता है।

4. **सृजन का स्रोत**

"अकार" सृष्टि का आरंभ है। इसे जानने वाला व्यक्ति सृजन की प्रक्रिया को समझता है और अपने भीतर ब्रह्म की रचनात्मक शक्ति का अनुभव करता है।

आध्यात्मिक संदेश

"अकार" और जाग्रत अवस्था व्यक्ति को यह सिखाते हैं कि बाहरी संसार भी ब्रह्म का ही रूप है।

इस अवस्था में प्राप्त ज्ञान से व्यक्ति अपनी इच्छाओं को नियंत्रित कर सकता है और पूर्णता की ओर बढ़ सकता है।

"अकार" को जानना, सृष्टि के रहस्य को जानने के समान है।

निष्कर्ष

यह श्लोक "अकार" के माध्यम से जाग्रत अवस्था और उसकी महत्ता को स्पष्ट करता है। "अकार" केवल ध्वनि नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय सत्य का प्रतिनिधित्व करता है। इसे जानने से व्यक्ति अपनी जाग्रत अवस्था में आत्मा और ब्रह्म का अनुभव कर सकता है, जिससे जीवन की सभी इच्छाओं की पूर्ति और आध्यात्मिक उन्नति संभव होती है।

तत्वज्ञान:

"अ" अक्षर सृष्टि और चेतना का प्रारंभिक रूप है।

जागृत अवस्था में आत्मा का बाह्य अनुभव ब्रह्म के साथ उसके संबंध का पहला चरण है।

मन्त्र १०

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षात्
उभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति
नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥१०॥

हे प्रणव !
दूसरी मात्रा उकार जो श्रेष्ठ है पहली से ज्यादा,
अ एवं म के मध्य दोनों का मेल करे
यह तेजस प्रभु के तेज के द्वितीय स्वरूपों को कहे |

अनुवाद

स्वप्नस्थानः: स्वप्न अवस्था में स्थित। **तैजसः:** यह "तैजस" (स्वप्न अवस्था) का प्रतीक है, जिसमें व्यक्ति आंतरिक अनुभवों में स्थित रहता है। **उकारः**: यह ओंकार की दूसरी मात्रा, "उ" का प्रतीक है। **द्वितीया मात्रा:** यह ओंकार की दूसरी मात्रा है। **उत्कर्षात्:** इसके माध्यम से उच्चता प्राप्त होती है। **उभयत्वात्:** यह दोनों (स्वप्न और जाग्रत) के बीच स्थित होता है। **उत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं:** यह व्यक्ति को उच्च ज्ञान की प्राप्ति कराता है। **समानश्च भवति**: यह समानता, समता का प्रतीक बनता है। **नास्याब्रह्मवित्कुले भवति:** यह व्यक्ति ब्रह्मज्ञानी के रूप में विकसित होता है। **य एवं वेद:** जो इस ज्ञान को जानता है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **स्वप्न अवस्था और तैजस**

स्वप्न अवस्था को "तैजस" कहा गया है। इसमें व्यक्ति का चेतन मन भीतर की दुनिया में चला जाता है, जहाँ बाहरी वस्तुएँ और अनुभव गौण होते हैं। यह अवस्था आंतरिक दृष्टि और कल्पनाओं का संसार है।

2. **उकार और उसका अर्थ**

"उकार" ओंकार की दूसरी मात्रा है, जो स्वप्न अवस्था का प्रतीक है।यह "उ" ध्वनि से उत्पन्न होने वाली उच्चता और विस्तार को दर्शाती है। यह

दर्शाता है कि स्वप्न अवस्था में व्यक्ति अपने मानसिक और आंतरिक अनुभवों के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति करता है।

3. **ज्ञानसंतति का उत्कर्ष**

स्वप्न अवस्था में व्यक्ति एक उच्च स्तर का ज्ञान प्राप्त करता है, जो उसे ब्रह्म के साक्षात्कार की ओर अग्रसर करता है।

इस अवस्था में व्यक्ति समता (समानता) और उच्चता की ओर बढ़ता है, क्योंकि यह मानसिक स्थिति और आध्यात्मिक दृष्टि का विस्तार करती है।

4. **ब्रह्मवित् का जन्म**

जो इस ज्ञान को प्राप्त करता है, वह ब्रह्मज्ञान के साथ अपने कुटुंब या परिवार से एक उच्च आध्यात्मिक स्थिति में परिवर्तित हो जाता है।

वह ब्रह्मवित् (ब्रह्म का ज्ञानी) बन जाता है, और उसका जीवन सच्चे ज्ञान और वास्तविकता के प्रति प्रतिबद्ध होता है।

आध्यात्मिक संदेश

यह श्लोक स्वप्न अवस्था के माध्यम से व्यक्ति को उच्चतम ज्ञान की ओर अग्रसर करने की प्रक्रिया को बताता है।

ओंकार की "उ" मात्राओं के द्वारा व्यक्ति अपने भीतर की अनंत शक्ति और ज्ञान का अनुभव करता है।

यह ज्ञान केवल बाहरी संसार में नहीं, बल्कि स्वप्न और अंतर्निहित मानसिकता में भी प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष

यह श्लोक स्वप्न अवस्था के अनुभव को ओंकार की "उ" मात्रा से जोड़ता है, जो व्यक्ति को उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति की दिशा में मार्गदर्शन करता है। स्वप्न अवस्था में प्रवेश करके व्यक्ति अपने आंतरिक ज्ञान को पहचानता

है, और इसके द्वारा वह ब्रह्मवित् की स्थिति को प्राप्त करता है। इस श्लोक में बताया गया है कि स्वप्न अनुभव से अधिक गहरी समझ और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त की जा सकती

तत्वज्ञान:
"उ" आत्मा के विकास की मध्य अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है।
यह ज्ञान और ध्यान के उच्च स्तर तक पहुँचने का साधन है।

मन्त्र ११

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा
मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥

"गहरी नींद में प्राज्ञ जो,
मकार से ब्रह्म को समझो।
सर्व का अनुभव, अमृत का सुख,
यही है सत्य, यही है आभूषण।"

अनुवाद
सुषुप्तस्थानः: सुषुप्ति (गहरी नींद) की अवस्था। **प्राज्ञः**: यह "प्राज्ञ" का प्रतीक है, जो इस अवस्था में स्थित होता है। **मकारः**: यह ओंकार की तीसरी मात्रा, "म" का प्रतीक है। **स्तृतीया मात्रा**: यह ओंकार की तीसरी मात्रा है। **मितेरपीतेर्वा**: यह शब्द "म" के प्रतीक के साथ ही परमात्मा की अनंतता को दर्शाता है। **मिनोति ह वा इदं सर्वम्:** यह व्यक्ति को सभी

ब्रह्मांडीय अनुभवों की सम्पूर्णता का अनुभव कराता है। **पीतिश्च भवति:** और इसके माध्यम से व्यक्ति अमृततुल्य स्थिति प्राप्त करता है। **य एवं वेद:** जो इस ज्ञान को जानता है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **सुषुप्ति अवस्था और प्राज्ञ**

सुषुप्ति अवस्था गहरी नींद या शांति की अवस्था को दर्शाती है।
इस अवस्था में व्यक्ति पूरी तरह से बाहरी संसार से मुक्त हो जाता है, और इसका अनुभव उसे केवल आंतरिक शांति और शुद्धता का होता है।
"प्राज्ञ" शब्द इस अवस्था के उस व्यक्ति को संदर्भित करता है, जो आत्मा के शुद्धतम रूप को पहचानता है।

2. **मकार और उसका अर्थ**

"मकार" ओंकार की तीसरी मात्रा है, जो सुषुप्ति अवस्था का प्रतीक है।
यह "म" ध्वनि के माध्यम से ब्रह्मा के निर्विकल्प और शुद्ध रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें सब कुछ समाहित होता है।
"म" से न केवल व्यक्ति की शांति का अनुभव होता है, बल्कि यह ब्रह्मा के संपूर्ण रूप का प्रतीक भी है।

3**. सर्व का अनुभव**

सुषुप्ति अवस्था में व्यक्ति सब कुछ छोड़ देता है और शुद्ध ब्रह्म का अनुभव करता है।
इसमें व्यक्ति ब्रह्म के आंतरिक रूप और उसकी समग्रता को समझता है, और उसे सभी इच्छाओं और कर्मों से परे का अनुभव होता है।
इस अवस्था में ब्रह्म का साक्षात्कार होने से व्यक्ति अपने भीतर की परम शांति और पूर्णता का अनुभव करता है।

4. **अमृततुल्य स्थिति का आभास**
सुषुप्ति अवस्था में व्यक्ति अमृत, अर्थात निरंतर शांति और सुख की स्थिति का अनुभव करता है।
यह स्थिति जीवन के अन्य अनुभवों से परे होती है, और इस अवस्था में व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करता है।

आध्यात्मिक संदेश
यह श्लोक सुषुप्ति अवस्था के माध्यम से आत्मा और ब्रह्म के सर्वोच्च रूप को पहचानने का मार्ग बताता है।
"मकार" के माध्यम से आत्मा और ब्रह्म की असीमित शांति और परम स्थिति का अनुभव किया जा सकता है।
इस ज्ञान से व्यक्ति जीवन में अनंत शांति और सुख की स्थिति प्राप्त करता है।

निष्कर्ष
यह श्लोक सुषुप्ति अवस्था और "मकार" के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। "म" की ध्वनि से व्यक्ति ब्रह्म का साक्षात्कार करता है और अपने जीवन को शांति और संतोष से भर देता है। सुषुप्ति में जाकर व्यक्ति अपने भीतर के परम सत्य और ब्रह्म के संपर्क में आता है, जो उसे पूर्ण शांति और अमृततुल्य सुख प्रदान करता है।

तत्वज्ञान:
"म" का अर्थ समापन और पूर्णता है।
सुषुप्ति अवस्था यह दिखाती है कि आत्मा स्थूल और सूक्ष्म अनुभवों से परे विश्राम कर सकती है।

मन्त्र १२

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत
एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद ॥१२॥

"अमात्र, चतुर्थ स्थिति शांति,
जहाँ प्रपंच की होती है खत्म यात्रा।
शिव ही अद्वैत, ब्रह्म का रूप,
ओंकार में समाहित, आत्मा का साक्षात्कार।"

अनुवाद

अमात्रः: यह शब्द "अमात्र" का अर्थ है, जिसके कोई माप या सीमा न हो, यानि जो बिना किसी रूप या आकार के हो। **चतुर्थोऽव्यवहार्यः**: यह चौथी अवस्था है, जिसे "तुरीय" कहा जाता है, और यह अव्यक्त, अपरिभाषित है, जिसमें कोई भौतिक या मानसिक अनुभव नहीं होता। **प्रपञ्चोपशमः**: यह प्रपंच (भौतिक संसार) का शांत होना, नष्ट होना है। **शिवोऽद्वैतः**: यह शुद्ध और अनंत शिव है, जो अद्वैत (अद्वैत तत्त्व) है, यानी जिसे कोई द्वैत (दोत्व) नहीं है। **एवम् ओंकार**: ओंकार ही आत्मा है। **आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं:** आत्मा स्वयं ही अपने वास्तविक रूप में स्थित होता है। **य एवं वेद:** जो इस ज्ञान को जानता है।

भाष्य (समीक्षा एवं व्याख्या)

1. **अमात्र और चतुर्थ अवस्था**

अमात्र का अर्थ है वह जो आकार, सीमा या माप से परे है। यह ब्रह्म का शुद्ध रूप है, जो किसी प्रकार की विभाजन या भेद से मुक्त होता है।

यह चौथी अवस्था (तुरीय अवस्था) को दर्शाता है, जिसमें कोई मानसिक या भौतिक अनुभव नहीं होता। यह ब्रह्म का निराकार और निराकार रूप है, जो सब कुछ से परे होता है।

2. **व्यवहार्य और प्रपञ्चोपशम**

व्यवहार्य का अर्थ है जिसे अनुभव किया जा सके। तुरीय अवस्था अव्यवहार्य है, यानी इसमें कोई भी भौतिक या मानसिक अनुभव संभव नहीं है।

प्रपञ्चोपशमः का अर्थ है संसार (प्रपंच) का शांत होना, जहां सब भौतिक और मानसिक स्थिति समाप्त हो जाती है, और केवल ब्रह्म का अनुभव होता है।

3. शिवोऽद्वैतः

"शिवोऽद्वैतः" का मतलब है वह शुद्ध शिव है, जो अद्वैत है, यानी जिसमें कोई द्वैत (विभाजन) नहीं है। यह ब्रह्म का तात्त्विक रूप है, जो एकरस और अपरिवर्तनीय है।

4. **ओंकार और आत्मा का संबंध**

ओंकार का स्वरूप इस श्लोक में आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है। ओंकार ही आत्मा का प्रतीक है, और यह आत्मा का सही अनुभव करने का माध्यम है।

आत्मा अपने शुद्धतम रूप में स्वयं को पहचानती है और अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करती है।

आध्यात्मिक संदेश

इस श्लोक में बताया गया है कि तुरीय अवस्था (चतुर्थ अवस्था) में व्यक्ति स्वयं को अद्वैत ब्रह्म के रूप में अनुभव करता है।

यह अवस्था अत्यधिक शांति और आत्मसाक्षात्कार की अवस्था होती है, जहां संसार का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और व्यक्ति शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है।
ओंकार, जो सभी अवस्थाओं का सार है, उसी में आत्मा का पूर्ण रूप स्थित है।

निष्कर्ष

यह श्लोक ब्रह्म के शुद्ध रूप और तुरीय अवस्था की महिमा को दर्शाता है। तुरीय अवस्था, जो अमात्र (बिना माप की) होती है, में व्यक्ति ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, जो शुद्ध शांति और अद्वैत का प्रतीक है। ओंकार, जो इस अवस्था का प्रतीक है, आत्मा के वास्तविक रूप में स्थित होने का मार्गदर्शन करता है।

तत्वज्ञान:

तुरीय अवस्था आत्मा का अंतिम सत्य है।
यह अवस्था अनुभव, विचार, और शब्दों से परे है और केवल साधना के माध्यम से अनुभव की जा सकती है।

मांडूक्य उपनिषद का समापन: विस्तृत टिप्पणी

मांडूक्य उपनिषद अद्वैत वेदांत का गहनतम और संक्षिप्ततम ग्रंथ है, जो महर्षि मांडूक्य द्वारा रचित है। यह उपनिषद 12 मंत्रों में आत्मा, ब्रह्म और ओंकार (ॐ) का विश्लेषण करते हुए चेतना के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करता है। इसके समापन पर, यह टिप्पणी इस ग्रंथ के महत्व, दार्शनिक दृष्टिकोण और व्यावहारिक उपयोगिता को समझाने का प्रयास करती है।

1. **ओंकार और आत्मा का अद्वैत:**
मांडूक्य उपनिषद का मुख्य आधार ओंकार (ॐ) है, जिसे संपूर्ण ब्रह्मांड और आत्मा का प्रतीक माना गया है।
अक्षर ओंकार: यह तीन मात्राओं (अ, उ, म) और चौथी अमात्रा (तुरीय) के माध्यम से आत्मा की चार अवस्थाओं को दर्शाता है:

जाग्रत अवस्था (वैश्वानर): बाह्य जगत का अनुभव।
स्वप्न अवस्था (तैजस): सूक्ष्म जगत का अनुभव।
सुषुप्ति अवस्था (प्राज्ञ): सभी अनुभवों का विलय।
तुरीय अवस्था: पूर्ण शांति और अद्वैत का अनुभव।
यह उपनिषद स्पष्ट करता है कि ॐ न केवल ब्रह्मांड का प्रतीक है, बल्कि आत्मा और ब्रह्म का अद्वैत स्वरूप भी है।

2. **आत्मा के चार चरण और चेतना का विज्ञान:**
मांडूक्य उपनिषद आत्मा की चार अवस्थाओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है।
जागृत : यहाँ आत्मा स्थूल जगत में बाहरी विषयों का अनुभव करती है।

स्वप्न: आत्मा आंतरिक अनुभवों (कल्पना और स्मृतियों) में लीन होती है।
सुषुप्ति: आत्मा पूर्ण शांति में रहती है, परंतु ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं करती।
तुरीय: यह आत्मा की सर्वोच्च अवस्था है, जहाँ द्वैत समाप्त हो जाता है। इसे "प्रपंचोपशम" कहा गया है, जो संसार और अनुभवों के पार जाने की स्थिति है।

दार्शनिक महत्व:

यह अवस्थाएँ चेतना के विकास का वैज्ञानिक स्वरूप दर्शाती हैं। साधक के लिए यह जानना आवश्यक है कि आत्मा की प्रकृति सीमित जागरूकता से शुद्ध अद्वैत तक का मार्ग प्रशस्त करती है।

3. **ओंकार की व्यावहारिक साधना:**

मांडूक्य उपनिषद ओंकार की साधना को मोक्ष का साधन बताता है।
"अ" अक्षर: जाग्रत अवस्था का प्रतीक है। यह सृजन और सक्रियता का भाव लाता है।
"उ" अक्षर: स्वप्न अवस्था का प्रतीक है। यह संतुलन और ध्यान की ओर अग्रसर करता है।
"म" अक्षर: सुषुप्ति का प्रतीक है। यह विश्रांति और सभी इच्छाओं का समापन है।
अमात्रा: यह तुरीय है, जो शुद्ध चेतना का प्रतिनिधित्व करती है।

साधना का लाभ:

ओंकार का उच्चारण और ध्यान साधक को आत्मा के विभिन्न चरणों का अनुभव कराकर तुरीय अवस्था तक पहुँचाने में सहायक होता है। यह शांति, ज्ञान और मोक्ष का मार्ग है।

4. तुरीय: अद्वैत का शाश्वत सत्य

मांडूक्य उपनिषद का चरम संदेश तुरीय अवस्था का बोध है।
तुरीय वह अवस्था है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म एक हो जाते हैं।
इसे "शिव," "शांत," और "अद्वैत" कहा गया है।
यह अवस्था प्रपंच (संसार) के पार है, जहाँ केवल शुद्ध चेतना और ब्रह्म की अनुभूति होती है।

व्यावहारिक संदेश:

तुरीय अवस्था यह दर्शाती है कि साधक के लिए आंतरिक और बाहरी संसार से परे जाकर शुद्ध चेतना का अनुभव ही मोक्ष है। यह अवस्था शब्दों, विचारों और अनुभवों से परे है।

5. **आध्यात्मिक और दार्शनिक महत्व:**

मांडूक्य उपनिषद न केवल वेदांत का सार प्रस्तुत करता है, बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक चेतना अध्ययन और मानसिक शांति के लिए भी एक अमूल्य आधार प्रदान करता है।
आध्यात्मिक दृष्टिकोण: यह उपनिषद आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत को समझने का मार्ग दिखाता है।
दर्शन: यह चेतना के चार स्तरों का अध्ययन प्रस्तुत करता है, जो अद्वैत वेदांत का आधार है।

समकालीन प्रासंगिकता:

आज की व्यस्त जीवन शैली में मांडूक्य उपनिषद का संदेश मानसिक शांति, ध्यान और आध्यात्मिक उन्नति के लिए एक मार्गदर्शक है। ओंकार

का ध्यान व्यक्ति को भीतर की ओर ले जाता है और उसे स्वयं का बोध कराता है।

6. निष्कर्ष:

मांडूक्य उपनिषद अपनी संक्षिप्तता में व्यापकता समेटे हुए है।
यह आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत को प्रस्तुत करता है।
यह दिखाता है कि जीवन का अंतिम लक्ष्य आत्मा का बोध और तुरीय अवस्था का अनुभव है।
ओंकार की साधना को मोक्ष का सर्वोत्तम साधन बताकर यह उपनिषद ध्यान और साधना की महत्ता को स्थापित करता है।

संदेश:

मांडूक्य उपनिषद का अंतिम संदेश है कि आत्मा और ब्रह्म अलग नहीं हैं। तुरीय अवस्था का अनुभव ही जीवन का अंतिम उद्देश्य है। ओंकार के माध्यम से इस सत्य का अनुभव करना प्रत्येक साधक का धर्म है।

यह ग्रंथ मानवता को चेतना और ब्रह्म के गूढ़ रहस्यों को समझाने का अमूल्य उपहार है।

॥ ईशावास्योपनिषद् ॥

यजुर्वेदीय उपनिषद

ईशोपनिषद का प्रारंभिक परिचय

ईशोपनिषद भारतीय उपनिषदों में एक प्रमुख उपनिषद है जो वेदों के अंतिम भाग "अरण्यक" और "उपनिषद" में शामिल है। यह उपनिषद यजुर्वेद का हिस्सा है और इसे **ईशावास्योपनिषद्** भी कहा जाता है। यह उपनिषद आध्यात्मिक ज्ञान और जीवन के उच्चतम उद्देश्य की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करता है। इसका मुख्य विषय ईश्वर (ब्रह्म) और जीवात्मा के बीच संबंध है, और यह सर्वव्यापक आत्मा (ब्रह्म) के अस्तित्व की पुष्टि करता है।

ईशोपनिषद में कुल 18 मंत्र होते हैं, जो ईश्वर, आत्मा, सृष्टि, और जीवन के उद्देश्य पर केंद्रित हैं। यह उपनिषद संन्यास और साधना के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है और यह जीवन के सत्य और ब्रह्म के साथ एकता की ओर अग्रसर होने का उपदेश देता है। ईशोपनिषद का गूढ़ संदेश आत्मा और ईश्वर के अद्वितीय रूप को समझने का है। इसमें जीवन के कर्म, धार्मिक आस्थाएँ, और आध्यात्मिक सत्य को बहुत सुंदर और संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ईशोपनिषद का उद्देश्य

ईशोपनिषद का उद्देश्य सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करना है, जो आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीयता को समझने के लिए आवश्यक है। यह उपनिषद हमें बताता है कि अगर हम अपने जीवन को सही दिशा में जीते हैं, तो हम आध्यात्मिक उन्नति और ईश्वर के साथ एकता को प्राप्त कर सकते हैं। इसके मुख्य सिद्धांतों में शामिल हैं:

1. ईश्वर की एकता और सर्वव्यापिता: ईश्वर सर्वव्यापी है, और सभी प्राणी उसी ईश्वर के अंश हैं।
2. आत्मा का शाश्वत अस्तित्व: आत्मा अमर और शाश्वत है, और यह ईश्वर के साथ संबंध रखती है।
3. निर्विकल्प जीवन और साधना: जीवन में कर्मों को ठीक से अंजाम देना और बिना किसी स्वार्थ के अपने कर्तव्यों को निभाना चाहिए।
4. मुक्ति का मार्ग: आत्मज्ञान और ब्रह्म के साथ एकता की प्राप्ति से ही मुक्ति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

ईशोपनिषद का तत्वज्ञान

ईशोपनिषद का तत्वज्ञान मुख्यतः आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीयता पर आधारित है। यह उपनिषद संसार के अस्थायित्व और आत्मा के शाश्वत स्वरूप के बीच का अंतर स्पष्ट करता है। कुछ मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. **आत्मा और ब्रह्म का एकत्व**: ईशोपनिषद यह शिक्षा देता है कि आत्मा और ब्रह्म (ईश्वर) एक ही हैं। आत्मा ब्रह्म का ही अंश है, और यह ब्रह्म के ही साथ परम सत्य के रूप में विद्यमान है। व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना चाहिए, जो ब्रह्म के साथ एकताबद्ध है।
2. **सृष्टि और जीवन का उद्देश्य:** यह उपनिषद बताता है कि जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक सुख-सुविधाएँ नहीं हैं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति और ईश्वर के साथ मिलन है। इस दृष्टि से जीवन को सही दिशा में चलाना और कर्म योग का पालन करना चाहिए।
3. **स्वधर्म और कर्म**: ईशोपनिषद के अनुसार, जीवन के सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्यों को समझना और उन पर अमल करना चाहिए। यह उपनिषद यह भी बताता है कि हमारे कर्मों का फल हमारे जीवन में प्रत्यक्ष रूप से दिखता है, और हमें निष्कलंक और निष्काम कर्म करने चाहिए।

ईशोपनिषद का महत्व

ईशोपनिषद का महत्त्व न केवल भारतीय दर्शन में बल्कि विश्वभर में है। इसके गूढ़ और प्रासंगिक सिद्धांत आज भी लोगों को जीवन के उद्देश्य और आत्मज्ञान की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। यह उपनिषद आध्यात्मिक एकता की भावना को प्रोत्साहित करता है और यह दर्शाता है कि हमारे शरीर, आत्मा, और ब्रह्म के बीच कोई भेद नहीं है। यह जीवन को एक दिव्य उद्देश्य के रूप में देखने की प्रेरणा देता है और हमें सच्चे आत्मज्ञान की ओर अग्रसर करता है।

ईशोपनिषद का सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव

ईशोपनिषद का सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव गहरा और व्यापक है। यह उपनिषद वेदों की शांति और गंभीरता को एक नए रूप में प्रस्तुत करता है, जो समग्र मानवता के लिए अत्यधिक लाभकारी है। इसके सिद्धांतों ने भारतीय साधना पद्धतियों को प्रभावित किया है और आध्यात्मिकता, कर्मयोग, और ध्यान के क्षेत्र में गहरी समझ पैदा की है।

इसका "ईश वास्यमिदं सर्वं" का श्लोक आज भी सर्वव्यापी परमात्मा की अवधारणा को पुष्ट करता है, जो आत्मा और ब्रह्म के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। कर्म और ज्ञान के बीच संतुलन का भी इस उपनिषद में उल्लेख है, जो आज के जीवन में भी अत्यधिक प्रासंगिक है।

निष्कर्ष

ईशोपनिषद न केवल हिन्दू धर्म का, बल्कि सम्पूर्ण मानवता का एक अमूल्य धरोहर है। इसके श्लोक और संदेश हमें जीवन के उच्चतम उद्देश्य, सत्य और दिव्यता की ओर मार्गदर्शन देते हैं। यह उपनिषद हमें सिखाता है कि आत्मा और ब्रह्म का अस्तित्व एक है, और यह आत्मज्ञान

की प्राप्ति से ही मुक्ति (मोक्ष) संभव है। ईशोपनिषद के संदेश को अपनाकर हम अपनी जीवन यात्रा को सही दिशा में अग्रसर कर सकते हैं और आध्यात्मिक उन्नति की ओर बढ़ सकते हैं।

ईशावास्योपनिषद् के महत्व को समझती एक कविता

चाह नहीं कुछ पाऊँ ऐसा, जो है मेरे नहीं निमित
मेरी नियत का मुझको मिले, योग्य दूसरों का वर्जित
स्थावर जंगम बना जगत में, आपका आपको अर्पित
बस कृपा इतनी बनाये रख, लालसा जगे ना अनुचित

नाथ चाह बस इतनी सी है, कर्म करता मैं निरन्तर
कर्म मार्ग बताया आपने, शतायु पा जियूँ तदन्तर
रह मुक्त कर्म बंधन से मैं, धन्य रहूँ हो अभिलाषित
बस कृपा इतनी बनाये रख, लालसा जगे ना अनुचित

जीवन है सुना बहुमूल्यनिधि, समाप्त करना नही धर्म
आत्महत्या महा पाप है प्रभु, कदापि नही मानव कर्म
मृत्यु पश्चात जाएंगे उस , लोक जो अंध आच्छादित
बस कृपा इतनी बनाये रख, लालसा जगे ना अनुचित

आत्मा तो अचल है फिरक्यों, मन से तीव्र चलायमान
क्यों करजाती अतिक्रमण ये, पदार्थों काजो गतिवान
मुझे स्थिर कर वायु वर्षा को, कर इंदु इसे संपादित
बस कृपा इतनी बनाये रख, लालसा जगे ना अनुचित

स्वामी आपने बताया यह, आत्मा तो चलती भी है
आत्मा स्थिर है नहिं भी चलती, और पास रहती भी है
कभी यह पास तो कभी दूर, और पास नही भी रहे
यह आत्मा सब के भीतर है, और वहाँ नहीं भी रहे

हे नाथ मैं देखूं प्राणियों, को सभी कहें आत्मा है
न करूँ में घृणा प्राणियों से, कभी जहां परमात्मा हैं
प्रभु यह आकांक्षा अंतस में, विराजे सदा ही मेरे
कामना बनी रहे सदा बस, यही की दया हो मेरे

====0====

शांति पाठ मंत्र:

"पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्ण मुदचत्ये
पूर्णस्य पूर्ण मादाये पूर्ण मेवावशिश्यते"

हे प्रभु !
आप ही पूर्ण हो, परिपूर्ण हो,
यह जगत जो बनाया आपने वह भी पूर्ण है, सम्पूर्ण है,
पूर्णता में ही सब पूर्ण हैं,
पूर्णता में ही प्रभु
आपकी पूर्णता ही विशेष है
बस सब पूर्ण करें |

प्रारंभ में ही प्रभु की सत्ता और उनके अस्तित्व को सर्वोपरि स्वीकार कर लिया गया है| यह मान लिया गया है कि प्रभु पूर्ण हैं और इसमें कोई संशय नही| उन पर किसी प्रकार का प्रश्न चिन्ह नही लग सकता| पुराणों में कथा को समझाने के लिए विभिन्न पात्रों की रचना की गयी ताकि कथानक के रूप में वेदांत समझ आये| हम उसे ही देवता मानने लगे जबकि सत्य यह है कि ब्रह्म एक है| वह अज़र है, अगोचर है एवं पूर्ण है |
इशोपनिषद यजुर्वेद के ४० वें मंडल का सूक्त माना जाता है| इसमें जहाँ ब्रह्म की सार्वभौमता सिद्ध की गयी है, वहीं जीवन के मूल्य को कर्म-मार्ग पर चित्रित किया गया है, प्रारंभ के श्लोकों में यह कहा गया है कि प्रभु ने जो भी दिया, उसे सहर्ष स्वीकार कर किसी विशेष की लालसा नही करनी चाहिए, क्योंकि कर्म ही सर्वोपरि है| एवं जीवन तो क्षण भंगुर है| फिर आत्मा की विवेचना की गयी है कि आत्मा अचल है| यह न तो क्षरित होती है न ही

समाप्त| शरीर है जो चोला बदलता है, मन पर संयम रखना प्राथमिकता है क्योंकि मन ही है जो चंचल है | ब्रह्म स्वरुप नाथ को मानते हुए कहा गया है की, बुद्धि,विद्या,संभवता आदि धीरता से प्राप्त होती है, प्रत्येक श्लोक का विस्तृत भाष्य जितना चाहे कर लें, उसका अंत नही है| अंतिम श्लोक में एकाकी नाथ को वंदन कर सब पाप कर्मों से मुक्ति माँगी गयी है ||

मूल शब्दार्थ:

1. **पूर्ण: सम्पूर्ण,** अपरिवर्तनीय, परिपूर्ण, अनन्त। 2. **मदः**: वह जो दान या उत्सर्जन करता है, यहाँ इसका अर्थ है 'वह सम्पूर्ण' (ब्रह्म यापरमात्मा) 3. **मिदं**: यह (संसार या विश्व)। 4. **पूर्णात्**: पूर्णता से, पूर्णता से उत्पन्न। 5. **मुद:** आनंद, समृद्धि, या संतोष। 6. **चत्ये:** संप्रेषित होता है, फैलता है।7. **पूर्णस्य:** पूर्णता (यहाँ, ब्रह्म की पूर्णता)। 8. **मादाय**: से (अर्थात ब्रह्म से)। 9. **मेव:** केवल, एकमात्र। 10. **आवशिश्यते:** बचता है, बचा हुआ रहता है।

भावार्थ:

यह शांति मंत्र ब्रह्म के अभिव्यक्ति और उसकी अपरिमेयता को प्रकट करता है। इसमें पूर्णता (पूर्ण) का तत्व बताया गया है, जो स्वयं में सम्पूर्ण है और जिससे अन्य सभी चीजें उत्पन्न होती हैं।

1. "पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्ण मुदचत्ये"

इस श्लोक में यह कहा गया है कि ब्रह्म (पूर्ण) से ही यह सम्पूर्ण संसार (मिदं) उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म की जो असीम और अव्यक्त शक्ति है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और उसी से समस्त प्रपंच का प्रसार और विस्तार होता है। यह पूर्णता असीम है और उससे निकलने वाली समृद्धि, आनंद और शांति भी अव्यक्त रहती है।

2. "पूर्णस्य पूर्ण मादाये पूर्ण मेवावशिश्यते"

इस भाग में यह बताया गया है कि जब ब्रह्म (पूर्ण) से सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है, तब भी ब्रह्म स्वयं अपरिवर्तित और संपूर्ण रहता है। वह अडिग और अपरिवर्तनीय रहता है। अर्थात, ब्रह्म के विभाजन या प्रसार से वह कभी भी अपूर्ण नहीं होता। संसार की उत्पत्ति और परिवर्तन के बावजूद ब्रह्म अपनी पूर्णता में रहता है, और उसकी पूर्णता में कोई कमी नहीं आती।

यह श्लोक अद्वैत वेदांत के सिद्धांत का समर्थन करता है, जिसमें ब्रह्म को सम्पूर्ण, निराकार और सर्वव्यापक माना जाता है। ब्रह्म का विस्तार और इसकी उत्पत्ति सृष्टि के रूप में होती है, लेकिन ब्रह्म स्वयं अपनी मूल स्थिति में सम्पूर्ण रहता है, और किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं होता।

व्याख्या:

इस शांति मंत्र का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म की सम्पूर्णता और उसकी निराकारता का बोध कराना है।

1. **पूर्णता का अद्वितीय स्वरूप:**

यहाँ ब्रह्म की जो व्याख्या की गई है, वह पूर्णता के रूप में है। ब्रह्म के अंदर कोई कमी नहीं होती, और वह न तो जन्म लेता है, न मरता है। संसार के समस्त रूप और रूपांतरण उसकी पूर्णता से उत्पन्न होते हैं, फिर भी ब्रह्म स्वयं अपनी स्थिति में अपरिवर्तित रहता है।

2. **ब्रह्म का निराकार रूप:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म निराकार है, वह किसी रूप, आकार या सीमा में नहीं बंधा होता। संसार का हर रूप, हर वस्तु, और प्रत्येक जीवात्मा ब्रह्म की पूर्णता से उत्पन्न होते हैं, लेकिन ब्रह्म स्वयं वही अपरिवर्तित और सम्पूर्ण स्थिति में रहता है। ब्रह्म के भीतर न तो कोई वृद्धि होती है और न ही कोई हानि।

3. **अद्वैत वेदांत की शिक्षा:**
इस श्लोक के माध्यम से अद्वैत वेदांत के दर्शन को समझने का प्रयास किया गया है, जहाँ यह सिद्धांत है कि ब्रह्म और आत्मा एक ही हैं। ब्रह्म का कोई दूसरा रूप नहीं होता, सब कुछ उसी की अभिव्यक्ति है, और अंततः हर आत्मा ब्रह्म का ही रूप है।

आदि शंकराचार्य का भाष्य:
आदि शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक ब्रह्म के अपरिवर्तनीय और संपूर्ण स्वरूप को दर्शाता है। उन्होंने "पूर्ण" शब्द का उपयोग करते हुए यह स्पष्ट किया कि ब्रह्म अपार और निराकार है, और यही शांति और समृद्धि का स्रोत है। शंकराचार्य ने इस मंत्र को यह कहते हुए समझाया कि ब्रह्म से उत्पन्न होने वाले सभी जीव और घटनाएँ भिन्न होते हुए भी अंत में उसी ब्रह्म में समाहित हो जाते हैं। ब्रह्म की पूर्णता और निराकारता, उसका विस्तार और समावेश, वेदांत के अनुसार अज्ञानी व्यक्तियों के लिए पारदर्शी है, क्योंकि वह स्वयं को ही सत्य और आत्मा के रूप में अनुभव करता है।

निष्कर्ष:
यह शांति मंत्र ब्रह्म की असीम और अपरिवर्तनीय पूर्णता की अवधारणा को स्पष्ट करता है। वह सम्पूर्ण है, और उसके अंदर कोई भी कमी या परिवर्तन नहीं होता। संसार की सम्पूर्ण उत्पत्ति और निरंतर परिवर्तन के बावजूद, ब्रह्म की स्थिति हमेशा समान रहती है, और वह कभी भी अपनी पूर्णता से हटा नहीं सकता। यह श्लोक वेदांत के अद्वैत सिद्धांत की पुष्टि करता है, जिसमें ब्रह्म और आत्मा के बीच कोई भेद नहीं है।

मंत्र:1

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥"

हे ईश्वर
आप से है
सब आच्छादित,
जग में जो कुछ है।
त्याग भाव से कर उपयोग,
संतोष रहे मन में।
किसी और का धन मत चाहो,
सब कुछ है प्रभु का।
लालच त्यागो,
धर्म अपनाओ,
शांति मिले जग में।
जग में परिवर्तन सदा रहे,
ईश्वर अचल है।
उसके नियम से चलो सदा,
सुखमय हर पल है।

मूल शब्दार्थ:
1. **ईशावास्यम्:** ईश्वर से आच्छादित, ईश्वर का निवास। 2. **इदं सर्वं:** यह सब कुछ। 3. **यत्किञ्च:** जो भी। 4. **जगत्याम्:** जगत में, संसार में। 5.**जगत्:** चलायमान, परिवर्तनशील। 6. **तेन:** उसी के द्वारा। 7. **त्यक्तेन:**

त्यागपूर्वक। 8. **भुञ्जीथा:** भोग करो, उपयोग करो। 9. **मा गृधः**: लालच मत करो। 10. **कस्यस्वित्**: किसी का। 11. **धनम्: धन,** संपत्ति।

भावार्थ:

संसार में जो कुछ भी है, वह ईश्वर का ही स्वरूप है। सभी वस्तुएँ उसी से आच्छादित हैं। इसलिए इनका उपयोग त्याग और संतोष के साथ करो। किसी अन्य की संपत्ति के प्रति लालच मत करो, क्योंकि सब कुछ ईश्वर का है।

व्याख्या:

1. **ईश्वर का सर्वव्याप्त स्वरूप:**

यह मंत्र ईश्वर की सर्वव्यापकता और सर्वस्वत्व को स्पष्ट करता है।

जो कुछ भी इस संसार में है, वह ईश्वर से ही उत्पन्न है और उसी का स्वरूप है।

2. **त्याग का महत्त्व:**

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" का अर्थ है कि संसार की वस्तुओं का उपभोग त्याग और संतोष के साथ करो।

त्याग का अर्थ केवल वस्तुओं का त्याग नहीं है, बल्कि मोह, अहंकार, और लालच का त्याग है।

3. **लालच से बचाव:**

"मा गृधः" का सीधा संदेश है कि किसी और की संपत्ति के प्रति लालच न करो।

यह आत्मसंयम और दूसरों के अधिकारों का सम्मान करने की शिक्षा देता है।

4. **संपत्ति का सच्चा स्वामी:**
इस मंत्र में स्पष्ट है कि संपत्ति का स्वामी न तो मनुष्य है और न ही कोई अन्य जीव।
सब कुछ ईश्वर का है, और हमें इसे एक ट्रस्टी के रूप में उपयोग करना चाहिए।
5. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**
भौतिक वस्तुओं का उपयोग करते हुए भी, यह समझें कि वे परमात्मा की कृपा से हैं।
यह भोग और त्याग के बीच संतुलन स्थापित करने की शिक्षा है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>
1. **ईश्वर की सर्वव्यापकता:**
शंकराचार्य ने "ईशावास्यमिदं सर्वम्" को अद्वैत के सिद्धांत से जोड़ा है।
उनके अनुसार, यह जगत ब्रह्म का ही रूप है, जो ज्ञान और चेतना के माध्यम से अनुभव किया जा सकता है।
2. **त्याग और भोग का संबंध:**
"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" का अर्थ उन्होंने वैराग्य से जोड़ा है।
यह वैराग्य केवल बाहरी वस्तुओं का नहीं, बल्कि मानसिक संलग्नता का भी त्याग है।
3. **लालच का त्याग:**
"मा गृधः" का संदेश यह है कि यदि मनुष्य लालच से मुक्त हो जाए, तो संसार में शांति और समृद्धि संभव है।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:
1. संपत्ति का ट्रस्टी भाव:

हम जो कुछ भी भोगते हैं, वह ईश्वर का दिया हुआ है।
हमें इसे एक ट्रस्टी की तरह उपयोग करना चाहिए, न कि स्वामी की तरह।

2. **संतोष और त्याग का महत्व:**

अधिकाधिक पाने की लालसा आज की दुनिया की समस्याओं का मूल है। इस मंत्र का संदेश संतोष और त्याग के माध्यम से संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

3. **सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण:**

दूसरों के अधिकारों का सम्मान करना और अपने अधिकारों का संयमित उपयोग करना समाज में शांति और सद्भाव बनाए रखता है।

4. **पर्यावरण संरक्षण:**

"त्यक्तेन भुञ्जीथा" का अर्थ प्रकृति और संसाधनों का सतर्क और संतुलित उपयोग भी है।

निष्कर्ष:

यह मंत्र जीवन को ईश्वरमय दृष्टि से देखने की प्रेरणा देता है। यह हमें सिखाता है कि संसार में जो कुछ भी है, वह परमात्मा का अंश है। इसलिए, इसे संतोष और त्याग के साथ उपयोग करना चाहिए। लालच, स्वार्थ, और भोग की अति से बचकर ही सच्चा सुख और शांति प्राप्त की जा सकती है।

मंत्र:2

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥"

कर्म करो इस जगत में,
सौ वर्षों तक जीवन जीओ।

निष्काम भाव से कर्म करो,
मुक्ति का मार्ग तभी पाओ।
नहीं है कर्म से बचाव,
यही धर्म है, यही प्रभाव।
कर्म के बिना न जीवन पूर्ण,
यहीं से होता मोक्ष का मूल।
जो कर्म करें त्याग से भरे,
वह बंधन से मुक्त रहे।
कर्म ही जीवन का आधार,
यही सत्य, यही उद्धार।

मूल शब्दार्थ:
1. **कुर्वन्:** करते हुए। 2. **एव:** निश्चित रूप से। 3. **इह:** इस संसार में। 4. **कर्माणि:** कर्म, कार्य। 5. **जिजीविषेत्:** जीने की इच्छा। 6. **शतं समाः**: सौ वर्षों तक। 7. **एवम्:** ऐसा ही। 8. **त्वयि:** तुम्हारे लिए। 9. **न अन्यथा:** और कोई दूसरा मार्ग नहीं। 10. **एतः**: इससे। 11. **अस्ति**: है। 12. **न कर्म लिप्यते:** कर्म बांधता नहीं। 13. **नरे:** मनुष्य को।

भावार्थ:
इस संसार में मनुष्य को कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने की इच्छा रखनी चाहिए। यही उसका धर्म है। ऐसा करने पर, कर्म का बंधन उसे स्पर्श नहीं करता।

व्याख्या:
1. **कर्म के महत्व का संदेश:**

यह मंत्र बताता है कि जीवन में कर्म करना अनिवार्य है।
कर्म से भागने का कोई विकल्प नहीं है; केवल सही भावना और निष्ठा के साथ कर्म करना ही मुक्ति का मार्ग है।

2. **जीवन का उद्देश्य:**

"जिजीविषेच्छतं समाः" का तात्पर्य है कि मनुष्य को जीवन की पूर्णता तक (सौ वर्ष प्रतीकात्मक है) कर्म करते हुए जीना चाहिए।
यह जीवन को उत्साह और उद्देश्य के साथ जीने की प्रेरणा देता है।

3. **कर्म से अबंधन:**

यदि कर्म को निष्काम भाव से (फल की इच्छा रहित) किया जाए, तो वह बंधन का कारण नहीं बनता।
यह "कर्मण्येवाधिकारस्ते" (गीता) के सिद्धांत के अनुरूप है।

4. अन्यथा मार्ग नहीं:

इस मंत्र में स्पष्ट कहा गया है कि जीवन में निष्क्रियता का कोई स्थान नहीं है।
कर्म के बिना जीने का प्रयास प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।

5. आध्यात्मिक दृष्टिकोण:

सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन को एक साथ जोड़ा गया है।
कर्म करते हुए भी आध्यात्मिक उन्नति संभव है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

1. **कर्म और ज्ञान का संबंध:**

शंकराचार्य ने कर्म को ज्ञान की प्राप्ति का एक साधन बताया है।
निष्काम कर्म से चित्त शुद्धि होती है, जो आत्मज्ञान की ओर ले जाती है।

2. **जीवन में संतुलन:**

यह मंत्र कर्म और वैराग्य के बीच संतुलन स्थापित करने का निर्देश देता है।

गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी आध्यात्मिक मार्ग पर चला जा सकता है।

3. **कर्म से अबंधन:**

यदि कर्म भगवान को अर्पित किए जाएं, तो वे मनुष्य को बंधन में नहीं डालते।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **कर्म से भागने का विकल्प नहीं:**

यह मंत्र हमें सिखाता है कि जीवन में निष्क्रियता का कोई स्थान नहीं है।
हर व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

2. **निष्काम कर्म का महत्व:**

कर्म का बंधन तभी नहीं होता, जब इसे निष्काम भाव से किया जाए।
यह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में संतुलन स्थापित करने की शिक्षा देता है।

3. **दीर्घायु और सक्रियता:**

जीवन में दीर्घायु और सक्रियता का उद्देश्य केवल भौतिक सुख नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति भी है।
कर्म के माध्यम से आत्मा की शुद्धि और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।

4. **सकारात्मक जीवन दृष्टि:**

जीवन को उत्साह और सकारात्मक दृष्टि से देखने का संदेश है।
चाहे परिस्थितियाँ जैसी भी हों, मनुष्य को अपने कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए।

निष्कर्ष:

यह मंत्र कर्म के महत्व और उसकी पवित्रता को दर्शाता है। यह हमें सिखाता है कि कर्म ही जीवन का आधार है और सही भावना से किया गया कर्म

बंधन का कारण नहीं बनता। निष्काम कर्म का अभ्यास, दीर्घायु जीवन और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।

मंत्र -3

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥"

असुर्याः जो होते हैं, पाप से ढकी दुनिया में।
वे जाते हैं मृत्यु के बाद, अंधकार में घिरते हैं।
जो आत्महत्या करते हैं, वे भी जाते उसी राह में।
अज्ञान और पाप से घेरते हैं, उनका जीवन अंधकार में।
सत्य और धर्म से जो दूर हैं, वे पाते हैं असुर्य लोक।
यह स्थान नहीं है सुखमय, यहां हर कदम पर दुःख का शोक।

मूल शब्दार्थ:
1. **असुर्याः**: असुरों के लोक, यानी पापी और धर्म-विरोधी लोग। 2. **नाम:** नाम, अर्थात्। 3. **ते लोका:** वे लोक (स्थान), अर्थात् वे स्थान या दुनिया। 4. **अन्धेन:** अंधकार, अज्ञान और भ्रम। 5. **तमसा:** अंधकार से, अज्ञानता से। 6. **आवृताः**: आवृत, घेर लिया गया, ढक लिया गया। 7. **तान्:** उन (लोगों) को। 8. **ते:** वे (लोग)। 9. **प्रेत्य**: मृत्यु के बाद, मरने के बाद। 10. **आभिगच्छन्ति:** वे जाते हैं, वे पहुँचते हैं। 11. **ये:** जो। 12. **के च:** जो लोग। 13. **आत्महनो**: आत्महत्या करने वाले। 14. **जनाः**: लोग, व्यक्ति।

भावार्थ:

इस श्लोक में यह बताया गया है कि जिन लोगों ने आत्महत्या की है और जिनका जीवन असत्य, पाप और निन्दनीय कार्यों में बीता है, वे मृत्यु के बाद असुर्य लोक में जाते हैं। इस स्थान पर अंधकार और अज्ञान का वास होता है, और वे अंधेरे में घिरकर अपनी स्थिति को और भी बुरा बना लेते हैं। असुर्य लोक का अर्थ है एक ऐसी जगह जहाँ सत्य और धर्म का अभाव है, और लोग अपने पापों और कुकर्मों के परिणामस्वरूप वहां पहुंचते हैं।

व्याख्या:

1. **असुर्य लोक की स्थिति:**

इस श्लोक में असुर्य लोक को अंधकारमय और अज्ञान से भरा हुआ बताया गया है। असुर्य लोक उन लोगों का स्थान होता है जो अपने जीवन में पाप, अधर्म, और दुराचार करते हैं। यह स्थान आत्महत्या करने वालों के लिए भी निर्धारित होता है।

अंधकार का प्रतीक आत्मज्ञान की कमी और भ्रमित जीवन के प्रतीक के रूप में किया गया है।

2. **आत्महत्याओं का परिणाम:**

"आत्महनो जनाः" यह संकेत करता है कि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति भी इस अंधेरे और पापमय लोक में जाते हैं। आत्महत्या को न केवल एक पाप माना गया है, बल्कि यह एक तरह से जीवन के उद्देश्य को त्यागने जैसा है, जो व्यक्ति को और अधिक दुखी और अंधकारमय भविष्य की ओर ले जाता है।

3. धर्म और सत्य का महत्व:

इस श्लोक में यह भी कहा गया है कि धर्म और सत्य से दूर रहने वाले लोग पाप का बोझ अपने जीवन में ढोते हैं और मृत्यु के बाद उन्हें असुर्य लोक

में जाना पड़ता है। यह स्थान अज्ञानता और अधर्म का प्रतीक है, जहाँ केवल पापियों की ही जगह होती है।

4. **आध्यात्मिक शिक्षा:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि पाप और आत्महत्या से मुक्त रहने के लिए हमें सत्य और धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए। जीवन के अंत तक यदि हम सच्चे कर्मों का पालन करते हैं, तो हमें पवित्र और उज्जवल लोक की प्राप्ति होती है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

1. **आत्महत्या के परिणाम:**

शंकराचार्य ने इस श्लोक में आत्महत्या करने की प्रवृत्ति को अत्यन्त निंदनीय बताया है। उनका कहना है कि आत्महत्या करने वाला व्यक्ति आत्मज्ञान की प्राप्ति से वंचित रहता है और उसका आत्मा अंधकारमय लोक में जाता है।

2. **असुर्य लोक का विशेषण:**

शंकराचार्य ने असुर्य लोक को अज्ञान, पाप और अविद्या का स्थान बताया है। वे यह कहते हैं कि यह लोक पापियों और अधर्मियों के लिए है, जहाँ से पुनः उद्धार की कोई संभावना नहीं होती।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **आत्महत्या से बचाव:**

इस श्लोक से यह शिक्षा मिलती है कि जीवन चाहे जैसे भी हो, आत्महत्या किसी समस्या का समाधान नहीं है। यह आत्महत्या करने वाले को असुर्य लोक में भेजता है, जो अज्ञान और पाप से भरा होता है।

2. **पाप और धर्म का फर्क:**

पाप और अधर्म से बचकर सत्य और धर्म के मार्ग पर चलना ही जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य है। इस श्लोक के माध्यम से हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हर व्यक्ति को अपने कर्मों का प्रभाव समझना चाहिए।

3. **आध्यात्मिक संतुलन:**

श्लोक में यह भी कहा गया है कि जीवन को ध्यान से जीना चाहिए, और आत्मज्ञान और आत्मसुधार की दिशा में प्रयास करना चाहिए।

निष्कर्ष:

यह श्लोक हमें जीवन की महत्ता और कर्मों के परिणाम के बारे में चेतावनी देता है। आत्महत्या और पाप की प्रवृत्तियों से बचना चाहिए, और धर्म तथा सत्य का पालन करते हुए जीवन जीना चाहिए। इससे व्यक्ति को शुभ और उज्जवल भविष्य की प्राप्ति होती है, जबकि पाप और आत्महत्या के मार्ग पर चलने वाले लोग असुर्य लोक की ओर जाते हैं।

मंत्र-4

"अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥"

वह स्थिर है, न गति है कोई उसमें,
मन से तेज़, हर विचार से परे है वह।
न देवता भी पहुंच सकें पहले जहाँ,
वह परम तत्व हर क्षेत्र में है महान।
वह तत्व दौड़ते तत्वों से बढ़कर,
सर्वत्र स्थित, पर है अडिग और शुद्ध।

सभी प्राणियों में बसा है वही,
जल, वायु से भी उसका आश्रय।

मूल शब्दार्थ:

1. **अनेजत्:** न गति करनेवाला, स्थिर। 2. **एकम्:** एक (अर्थात, ईश्वर, आत्मा या परम तत्व)। 3. **मनसो जवीयः:** मन से तेज़, यानी अत्यन्त तेज़, विचार से भी तेज़। 4. **नैनम्:** उसे (आत्मा को)। 5. **देवा:** देवता, शक्तियाँ। 6. **आप्नुवन्ति:** प्राप्त करते हैं। 7. **पूर्वम्:** पहले, प्रारंभ में। 8. **अर्षत्:** पहुंचते हैं, प्राप्त करते हैं। 9. **तत्**: वह (आत्मा, परम तत्व)। 10. **धावतः:** दौड़ते हुए। 11. **अन्य:** अन्य (सभी अन्य तत्वों से)। 12. **नत्येत्:** नहीं पहुंचते। 13. **तिष्ठत्:** स्थिर रहता है। 14. **तस्मिन्:** उसमें (आत्मा या परम तत्व में)। 15. **अपो:** जल, पानी। 16. **मातरिश्वा**: आकाश और वायु की अधिष्ठात्री देवी (यह प्रतीक है उस तत्व का जो सबको समाहित करने वाली शक्ति है)। 17. **दधाति:** वह धारण करती है, वह पालन करती है।

भावार्थ:

यह मंत्र आत्मा के अद्वितीय और स्थिर स्वभाव का वर्णन करता है। वह आत्मा एक ही है, जो मन से तेज़ है, और सभी देवताओं के पहुंचने से पहले वह सर्वोत्तम स्थान पर स्थित है। यह वह तत्व है, जो सभी चीजों से सर्वश्रेष्ठ है, स्थिर है, और सभी को अपने अंदर समाहित करता है। इसी तत्व में सब कुछ समाहित होता है, जैसे जल और वायु इसके अंतर्गत होते हैं, और वे इसे अपने आधार के रूप में धारण करते हैं।

व्याख्या:

1. **आत्मा का अद्वितीय और स्थिर स्वभाव:**

"अनेजदेकं मनसो जवीयो" से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा या परम तत्व गति से परे है, वह स्थिर है, लेकिन विचार और चेतना के क्षेत्र में सबसे तेज़ है। आत्मा के बारे में यह कहा गया है कि वह न केवल शारीरिक गति से परे है, बल्कि मानसिक और बौद्धिक गतिविधियों से भी तेज़ है।

2. **सर्वव्यापकता और स्थिरता:**

"तद्धावतोऽन्यानत्येति" में यह दर्शाया गया है कि अन्य कोई तत्व या शक्ति इस परम तत्व तक नहीं पहुंच सकती, वह अनन्त और सर्वव्यापी है। परम तत्व या आत्मा बिना हिले-डुले स्थिर रहता है, जबकि सभी अन्य तत्व दौड़ते हैं और परिवर्तनशील होते हैं।

3. **समाहित और पालन करनेवाली शक्ति:**

"तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति" यह दर्शाता है कि यह परम तत्व सभी चीजों को समाहित करता है, जैसे जल और वायु की शक्ति सबको अपने भीतर समाहित करती है। आत्मा या परम तत्व प्रत्येक प्राणी और तत्व का आधार है, और यह सभी को धारण करता है।

4. **ब्रह्म और आत्मा का संबंध:**

इस श्लोक में ब्रह्म (आत्मा) को एक स्थिर, अदृश्य, और सर्वव्यापी तत्व के रूप में चित्रित किया गया है, जो मन से भी तेज़ है और जो देवताओं से भी पहले अस्तित्व में है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

आदि शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक में आत्मा या परम तत्व का जो वर्णन किया गया है, वह निर्गुण ब्रह्म का ही परिचय है। वह सर्वव्यापी और अडिग है, कोई भी शक्ति या देवता इस ब्रह्म के समकक्ष नहीं है। वह परम सत्य है, जो शुद्ध चेतना का रूप है, और इसी में समस्त ब्रह्मांड समाहित

है। शंकराचार्य ने इसे ब्रह्म के अद्वितीय रूप में दर्शाया है, जो सब कुछ उत्पन्न करता है, उसे धारण करता है और अंत में उसे संहार करता है।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **आत्मा की वास्तविकता:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि आत्मा या परम तत्व शुद्ध और अडिग है। यह किसी भी भौतिक या मानसिक परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता। मनुष्य को अपने आत्मा के अद्वितीय और स्थिर स्वभाव को समझने की आवश्यकता है।

2. **सर्वव्यापकता और चेतना का महत्व:**

परम तत्व की सर्वव्यापकता और शुद्ध चेतना का यह संकेत है कि हमें अपनी चेतना को उच्चतम रूप में देखना चाहिए, जो सभी कुछ समाहित करने में सक्षम है।

3. **ध्यान और आत्मज्ञान का मार्ग:**

इस श्लोक में यह संदेश भी है कि ध्यान और साधना के माध्यम से हम उस परम तत्व को पहचान सकते हैं, जो हर जगह विद्यमान है और सर्वदा शुद्ध है।

निष्कर्ष:

यह श्लोक आत्मा या परम तत्व के अद्वितीय, स्थिर और सर्वव्यापी स्वभाव का वर्णन करता है। यह हमें बताता है कि जो तत्व स्थिर है, वह मन से तेज़ है, और उसकी स्थिति सभी तत्वों से सर्वोत्तम है। यह श्लोक आत्मज्ञान की महिमा को प्रतिपादित करता है और हमें यह समझाने का प्रयास करता है कि आत्मा ही सच्चा अस्तित्व है, जो सभी परिवर्तनशीलताओं से परे है।

मंत्र- 5

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥"

वह परम् तत्व चलता है,
फिर भी स्थिर रहता है,
वह हर जगह है,
दूर और पास दोनों में वह।
वह सभी के भीतर है,
और बाहर भी दिखाई देता है,
वह सर्वव्यापी है,
लेकिन फिर भी
अदृश्य रहता है।

मूल शब्दार्थ:
1. **तत्:** वह (आत्मा या परम तत्व)। 2. **एजति:** गतिशील होता है, चलता है। 3. **तन्नैजति:** वह नहीं चलता, गतिहीन होता है। 4. **तत्**: वही तत्व। 5. **दूरे:** दूर। 6. **तद्वन्तिके:** पास, निकट। 7. **तत्:** वही तत्व। 8. **अंतरस्य:** के भीतर (सभी के भीतर)। 9. **सर्वस्य:** सभी का।10**. तत्:** वही तत्व।11**. उ:** वह।12. **सर्वस्य**: सभी का।13. **अस्य:** इसके। 14. **बाह्यतः**: बाहरी रूप से, बाहर से।

भावार्थ:

यह श्लोक परमात्मा की अज्ञेयता और सर्वव्यापकता को स्पष्ट करता है। वह परम तत्व कभी गतिशील नहीं होता, जबकि वह सर्वत्र है - कहीं दूर, कहीं पास, भीतर और बाहर, सब जगह विद्यमान है। इसका अर्थ यह है कि परमात्मा न तो शारीरिक रूप में गतिशील है, न उसकी कोई सीमित उपस्थिति है। वह प्रत्येक स्थान, प्रत्येक व्यक्ति, और प्रत्येक वस्तु के भीतर और बाहर विद्यमान है, परंतु उसकी वास्तविकता को समझना या देखना संभव नहीं है। उसकी उपस्थिति सर्वत्र है, लेकिन वह किसी विशेष स्थान में सीमित नहीं है।

व्याख्या:

1. **"तदेजति तन्नैजति"** (वह चलता है, वह नहीं चलता):

यहां यह कहा गया है कि परम तत्व गतिहीन और सक्रिय दोनों रूपों में मौजूद है। यह तत्व अपनी शुद्ध स्थिति में स्थिर होता है, और साथ ही, वह आत्मा और ब्रह्म के रूप में सृष्टि के हर कण में सक्रिय रूप से प्रकट होता है। इस प्रकार, यह श्लोक हमें यह बताता है कि परमात्मा अपनी असल स्थिति में स्थिर है, फिर भी वह सृष्टि के प्रत्येक रूप में सक्रिय है।

2. "तद्दूरे तद्वन्तिके" (वह दूर है, वह पास है):

परमात्मा न केवल हर स्थान में है, बल्कि वह दोनों, पास और दूर, दोनों स्थितियों में विद्यमान है। यह अंतर और दूरी एक मिथक है, क्योंकि परमात्मा या आत्मा का कोई भौतिक रूप नहीं होता। उसकी उपस्थिति हर जगह है, चाहे वह हमें पास प्रतीत हो या दूर।

3. **"तदन्तरस्य सर्वस्य" (वह हर चीज के भीतर है):**

यह अंश यह दर्शाता है कि परमात्मा न केवल बाह्य रूप से हर जगह है, बल्कि वह प्रत्येक चीज के भीतर भी विद्यमान है। यह ब्रह्म के अंतर्यामी रूप को प्रकट करता है, अर्थात वह सबका आधार और जीवों के भीतर स्थित

है। यह भी दर्शाता है कि परमात्मा का कोई विशेष रूप नहीं है, वह शुद्ध चेतना और अस्तित्व है, जो सभी को एक सूत्र में बांधता है।

4. "तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः" (वह हर चीज के बाहर भी है):

यह अंत में यह बताता है कि परमात्मा न केवल हमारे भीतर है, बल्कि वह बाहरी संसार में भी हर चीज के आस-पास मौजूद है। वह सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है, और उसकी उपस्थिति बाह्य रूप से भी हर वस्तु और जीव के साथ है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

आदि शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक का अर्थ यह है कि ब्रह्म (आत्मा) न तो कोई भौतिक वस्तु है, न उसकी कोई गतिशीलता है। वह सभी चीजों के भीतर और बाहर, हर स्थान, हर प्राणी में है। शंकराचार्य ने इसे ब्रह्म के निराकार और निराकार-पर रूप में व्याख्यायित किया है, जो एक साथ सभी स्थितियों में है, परंतु हमें वह दिखाई नहीं देता। इस ब्रह्म को केवल ध्यान और साधना द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। इस श्लोक के माध्यम से वे यह बताते हैं कि परमात्मा न तो किसी एक स्थान में सीमित है, न वह किसी एक रूप में रहता है; वह प्रत्येक जगह पर उपस्थित है और वह सभी तत्वों का आधार है।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि परम तत्व की उपस्थिति साकार या निराकार, दोनों रूपों में होती है। हमें यह समझना चाहिए कि परमात्मा या आत्मा किसी भौतिक रूप में नहीं बंधता, और न ही किसी स्थान में सीमित है। उसकी शक्ति और उपस्थिति सर्वव्यापी है।

2. **साधना और ध्यान:**
इस श्लोक से यह भी शिक्षा मिलती है कि परमात्मा का साक्षात्कार केवल बाहरी खोज से नहीं होता, बल्कि भीतर की चेतना और ध्यान के माध्यम से हम उसे पहचान सकते हैं। आत्मा और परमात्मा के भीतर और बाहर होने के कारण हमें अपने अंदर की शक्ति को पहचानना चाहिए।

3. धर्म और निराकार ब्रह्म:
यह श्लोक यह भी बताता है कि धर्म का पालन करते हुए हमें ब्रह्म का निराकार रूप समझना चाहिए, जो हमारे भीतर और बाहर सर्वव्यापी है। आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, और यह एक ही दिव्य तत्व है जो सभी जीवों को जीवन और चेतना प्रदान करता है।

निष्कर्ष:
यह श्लोक परमात्मा की सर्वव्यापकता, अद्वितीयता और निराकारता का स्पष्ट रूप से वर्णन करता है। वह तत्व स्थिर है और सक्रिय दोनों रूपों में पाया जाता है, और यह हर स्थान, हर प्राणी, और हर वस्तु के भीतर और बाहर विद्यमान है। इसका संदेश है कि परमात्मा का कोई शारीरिक रूप नहीं है, वह एक निराकार और शुद्ध चेतना के रूप में सर्वव्यापी है, और हमें इसे भीतर की दृष्टि और ध्यान से समझने की आवश्यकता है।

मंत्र- 6

"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥"

जो आत्मा में सबको देखे, सभी प्राणियों को एक समझे,
वह न किसी से घृणा करता है, न किसी को तुच्छ मानता है।
वह जानता है कि प्रत्येक प्राणी में आत्मा का अंश है,
इसलिए उसे हर एक में दिव्यता नजर आती है।

मूल शब्दार्थ:

1. **यस्तु:** जो व्यक्ति।2. **सर्वाणि:** सभी।3. **भूतानि:** जीव, प्राणी। 4. **आत्मन्येवानुपश्यति:** स्वयं में ही सभी प्राणियों को देखता है, आत्मा में ही सबका अस्तित्व देखता है। 5. **सर्वभूतेषु:** सभी प्राणियों में।6. **आत्मानं**: आत्मा, अपने आप को।7. **ततो:** उसके बाद।8. **न:** नहीं।9. **विजुगुप्सते**: घृणा करता है, परित्याग करता है।

भावार्थ:

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि जो व्यक्ति समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के रूप में देखता है, वह किसी भी प्राणी से घृणा नहीं करता। वह समझता है कि सभी जीवों में एक ही परमात्मा का अंश है, और यह ज्ञान उसे शांति और अहिंसा की ओर मार्गदर्शन करता है। जब व्यक्ति आत्मा में, अर्थात् अपनी शुद्धता में, सभी प्राणियों को एक जैसा देखता है, तो उसे कोई भी प्राणी घृणित या तुच्छ नहीं लगता। वह हर एक को सम्मान और प्रेम की दृष्टि से देखता है, क्योंकि वह जानता है कि सभी में एक दिव्य सत्ता का निवास है।

व्याख्या:

1. **आत्मा में सभी का समावेश:**

"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति" में यह बताया गया है कि जो व्यक्ति सभी प्राणियों को अपने आत्मा में समाहित देखता है, वह न केवल अपने लिए, बल्कि सभी के लिए एकजुटता का अनुभव करता है। वह किसी को भी दूसरे से अलग नहीं समझता और न ही उसे घृणा या तिरस्कार की भावना से देखता है। वह यह समझता है कि जो आत्मा उसके भीतर है, वही सभी प्राणियों में है।

2. प्रेम और अहिंसा की ओर मार्गदर्शन:

"सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते" का अर्थ है कि जब व्यक्ति यह समझता है कि सभी प्राणी आत्मा के रूप में एक ही तत्व से जुड़े हुए हैं, तो वह किसी से भी घृणा नहीं करता। उसका दृष्टिकोण प्रेम, करुणा, और अहिंसा से भरपूर होता है। उसे यह अनुभव होता है कि सभी प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, उसी दिव्य सत्ता के अंश हैं, और इसलिये सभी के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

3. घृणा का अभाव:

जब व्यक्ति यह समझता है कि आत्मा में सभी का समावेश है, तो उसे किसी भी प्राणी में अंतर या भेद नहीं दिखाई देता। उसकी नजर में हर प्राणी का महत्व बराबरी का होता है, क्योंकि वह जानता है कि सभी एक ही दिव्य शक्ति से उत्पन्न हैं।

4. **दर्शन का महत्व:**

इस श्लोक में यह भी कहा गया है कि जब व्यक्ति इस अद्वितीय दृष्टि से देखता है, तो वह मानसिक शांति प्राप्त करता है और किसी प्रकार की घृणा, द्वेष, या हिंसा से दूर रहता है। इस दृष्टिकोण के द्वारा व्यक्ति आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है और इस ज्ञान से जीवन में सार्थकता आती है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

आदि शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक का संदेश यह है कि ब्रह्मा या आत्मा को जानने से व्यक्ति में समभाव, प्रेम, और करुणा का भाव उत्पन्न होता है। शंकराचार्य ने इसे इस प्रकार व्याख्यायित किया है कि जो व्यक्ति आत्मा में ब्रह्म का अनुभव करता है, वह उसे अपने और दूसरे के बीच कोई अंतर नहीं देखता। वह यह जानता है कि परमात्मा सर्वत्र है, और इस ज्ञान से उसे किसी भी प्राणी में घृणा करने का कोई कारण नहीं मिलता। वह सभी प्राणियों में आत्मा को देखता है और इसीलिए उसे कोई भी जीव तुच्छ या अनमोल नहीं लगता।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **समानता और अहिंसा का महत्व:**

यह श्लोक आज के समय में भी बहुत प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें यह सिखाता है कि सभी प्राणियों के साथ समानता और प्रेम का व्यवहार किया जाना चाहिए। यदि हम यह समझें कि सभी प्राणियों में एक ही दिव्य आत्मा है, तो हम किसी से भी घृणा या भेदभाव नहीं करेंगे। यह दृष्टिकोण हमारे समाज में शांति और सौहार्द को बढ़ावा देता है।

2. **आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग:**

यह श्लोक यह भी दर्शाता है कि जब हम आत्मा को समझते हैं और उसे सभी में पहचानते हैं, तो हमारा आंतरिक दृष्टिकोण बदल जाता है। हम हिंसा, द्वेष, और भेदभाव से दूर रहते हुए प्रेम और करुणा के साथ जीवन जीने लगते हैं। यही आत्मिक उन्नति का मार्ग है।

3. **मानवता और समता का संदेश:**

यह श्लोक हमें यह भी सिखाता है कि हमें अपनी आँखों से सभी प्राणियों को एक समान देखना चाहिए। चाहे वह मनुष्य हो, पशु हो, या कोई अन्य

जीव, सभी में एक ही आत्मा बसी हुई है। यह मानवीयता का सबसे उच्चतम रूप है।

निष्कर्ष:
यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि जो व्यक्ति आत्मा को पहचानता है, वह सभी प्राणियों में आत्मा का ही रूप देखता है। ऐसे व्यक्ति में घृणा और द्वेष का कोई स्थान नहीं होता। वह सभी के प्रति समान भाव रखता है और प्रेम, करुणा, और अहिंसा का पालन करता है। यह श्लोक आत्मज्ञान की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जो हमें एकजुटता, समानता, और शांतिपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

मंत्र - 7

"यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥"

जो आत्मा में सबको देखे, और समझे कि सब एक हैं,
वह न किसी से मोह करता है, न किसी से शोक उसे होता है।
वह एकता को पहचानता है, और सर्वव्यापी दिव्य तत्व को जानता है,
ऐसे व्यक्ति को भौतिक सुख-दुःख से कोई प्रभावित नहीं कर सकता है।

मूल शब्दार्थ:
1. **यस्मिन:** जिस (परमात्मा या आत्मा) में।2. **सर्वाणि:** सभी 3. **भूतानि**: प्राणी, जीव।4. **आत्मैव:** केवल आत्मा ही। 5. **आभूत:** बना हुआ है, उत्पन्न हुआ है।6. **विजानतः:** जानने वाले के लिए, जो समझता है।7. **तत्र:** वहां,

उस अवस्था में।8. **को**: कौन।9. **मोहः**: मोह, भ्रम।10. **कः**: कौन।11. **शोकः** शोक, दु:ख।12. **एकत्वमनुपश्यतः**: जो एकता को देखता है, जो एकता का अनुभव करता है।

भावार्थ:

यह श्लोक हमें यह बताता है कि जब कोई व्यक्ति आत्मा या परमात्मा में सर्वव्यापीता को देखता है, तो वह समझता है कि सभी जीवों में एक ही दिव्य आत्मा विद्यमान है। ऐसी स्थिति में उसे न तो मोह का अनुभव होता है, न शोक का। क्योंकि वह एकता को समझता है और देखता है कि हर प्राणी और वस्तु में वही आत्मा है। जब व्यक्ति आत्मा के अद्वितीय रूप को समझता है, तो उसे जीवन की भिन्नताओं से मोह या शोक नहीं होता। वह एकता में विश्वास करता है, और इस प्रकार, वह न तो शारीरिक रूप में किसी से मोह करता है, न किसी से शोक अनुभव करता है।

व्याख्या:

1. "यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः" (जिसमें सभी प्राणी आत्मा के रूप में समाहित हैं, जो यह जानता है):

इस श्लोक में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति यह अनुभव करता है कि सभी प्राणी और वस्तु एक ही आत्मा के रूप में मौजूद हैं, वह दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण होता है। वह यह समझता है कि आत्मा ही जीवन का असली स्रोत है और प्रत्येक प्राणी में वही आत्मा व्याप्त है। इस प्रकार, उसे किसी भी प्राणी में भेद या अंतर नहीं दिखाई देता।

2. **"तत्र को मोहः कः शोक" (वहां मोह और शोक का क्या स्थान?):**

जब व्यक्ति यह समझता है कि आत्मा ही सर्वव्यापी है और सभी प्राणियों में एक ही आत्मा है, तो उसे मोह या शोक का कोई कारण नहीं दिखता। मोह

और शोक तब उत्पन्न होते हैं जब हम भौतिक रूपों और भिन्नताओं में अटक जाते हैं। लेकिन जब व्यक्ति आत्मा के अद्वितीय रूप को देखता है, तो वह इन सभी भौतिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। उसे न किसी से मोह होता है, न किसी से शोक।

3. **"एकत्वमनुपश्यतः" (जो एकता को देखता है):**

इस वाक्य का अर्थ यह है कि जब व्यक्ति आत्मा में और ब्रह्म में एकता का अनुभव करता है, तब वह किसी भी भेद या द्वैत को नहीं देखता। वह यह महसूस करता है कि सभी प्राणी और सृष्टि के हर अंग में वही एक दिव्य तत्व समाहित है। इस एकता का अनुभव करते हुए, उसे न तो कोई विशेष व्यक्ति पसंद आता है, न कोई नापसंद। वह सब में एकता और दिव्यता का दर्शन करता है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

आदि शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक में यह कहा गया है कि जब कोई व्यक्ति यह जानता है कि आत्मा में ही सब कुछ समाहित है, तो उसे किसी भी बाहरी चीज़ से मोह या शोक नहीं होता। शंकराचार्य ने इसे इस प्रकार व्याख्यायित किया है कि ब्रह्म (आत्मा) अचिन्त्य और निराकार है, और जब इसे जान लिया जाता है, तो व्यक्ति इस भौतिक संसार के भिन्न रूपों में उलझता नहीं है। उसे कोई शोक नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि जीवन और मृत्यु का चक्र केवल भौतिक रूपों में ही है, जबकि आत्मा शाश्वत और अविनाशी है।

शंकराचार्य ने यह भी कहा है कि यह श्लोक उन लोगों के लिए है जो आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीय रूप को समझते हैं। ऐसे लोग कभी किसी भी प्रकार के दुःख या शोक में नहीं पड़ते, क्योंकि वे जीवन के असल उद्देश्य और सत्य को समझ चुके होते हैं।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

यह श्लोक यह शिक्षा देता है कि जब हम आत्मा और परमात्मा में एकता का अनुभव करते हैं, तो हमारे जीवन में कोई द्वैत या भेदभाव नहीं रहता। हम सभी को एक ही दिव्य तत्व के रूप में देखते हैं और इसलिए न तो किसी से मोह होता है, न किसी से शोक। यह जीवन के दुखों और उलझनों से मुक्ति का मार्ग है।

2. **मानवता और समानता:**

इस श्लोक का संदेश यह है कि हमें सभी प्राणियों को एक समान देखना चाहिए, क्योंकि सभी में एक ही दिव्य आत्मा का अंश है। जब हम इस दृष्टिकोण से देखते हैं, तो हम किसी भी व्यक्ति में भेदभाव नहीं करते और सभी के साथ समानता और करुणा का व्यवहार करते हैं। यह दृष्टिकोण हमें सही तरीके से जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

3. **शांति और समता का मार्ग:**

यह श्लोक हमें यह भी सिखाता है कि जब हम एकता का अनुभव करते हैं, तो हमारी आंतरिक शांति बढ़ती है और हम बाहरी परिस्थितियों से अप्रभावित रहते हैं। मोह और शोक जैसी भावनाएँ तब नहीं उत्पन्न होतीं जब हम यह समझते हैं कि हम सभी एक ही दिव्य चेतना के अंश हैं।

निष्कर्ष:

यह श्लोक आत्मज्ञान की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह हमें यह सिखाता है कि जब हम आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव करते हैं, तो हमें मोह या शोक जैसी भावनाओं से मुक्ति मिलती है। इस प्रकार, हम जीवन में संतुलन और शांति प्राप्त करते हैं, और हम सभी प्राणियों को समान रूप से देख पाते हैं।

मंत्र- 8

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः॥"

वह परमात्मा शुद्ध और उज्जवल है, निराकार और निर्विकार,
पापों से मुक्त, निर्दोष और शुद्ध, कोई विकृति उसे नहीं छूती है।
वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी है, स्वयं से उत्पन्न हुआ है,
वह सत्य के अनुसार ब्रह्म के अर्थ को सभी को बताता है।

मूल शब्दार्थ:

1. **स: वह** (परमात्मा, आत्मा)।2. **पर्यगाच्छुक्रमकायम**: वह अत्यन्त उज्जवल, शरीरहीन और निराकार है।3. **अव्रणम**: वह न तो किसी घाव से ग्रस्त होता है, न किसी रूप में कोई विकृति होती है।4. **अस्नाविरं**: वह निर्विकार, निर्दोष और शुद्ध है, कोई विकृति या दूषण नहीं है।5. **शुद्धम:** पवित्र, निर्मल, शुद्ध।6. **अपापविद्धम्**: पापों से रहित, अविनाशी।7. **कविर्मनीषी**: वह सर्वज्ञ है, सभी रहस्यों का ज्ञाता है।8. **परिभूः**: वह सर्वव्यापी है, वह सबका परम स्वामी है।
9**. स्वयम्भू:** वह स्वयं उत्पन्न होने वाला, स्वयं से अस्तित्व में आने वाला है।10. **याथातथ्यतो**: जो सत्य के अनुसार, जैसा है वैसा है।11. **अर्थान्**: अर्थों, ब्रह्म के तत्वों या ज्ञान को।12. **व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः** समाभ्यः: वह शाश्वत, अनंत और निरंतर तत्वों के अनुसार उन सभी को व्याख्यायित करता है।

भावार्थ:

यह श्लोक परमात्मा या ब्रह्म के अद्वितीय गुणों का वर्णन करता है। इसमें कहा गया है कि वह परमात्मा निराकार, शुद्ध, पवित्र और निर्बाध है। वह न तो जन्म लेता है, न मृत्यु का अनुभव करता है। वह पापों से मुक्त और हर प्रकार के विकारों से अतीत है। वह सभी का ज्ञाता है, सर्वव्यापी है और सबका पालनहार है। वह स्वयं से उत्पन्न होता है (स्वयम्भू) और सत्य के अनुसार ब्रह्म के गूढ़ अर्थ को सभी को समझाता है। इस श्लोक में परमात्मा की शाश्वत, निर्विकार और अखंड सत्ता का परिचय दिया गया है।

व्याख्या:

1. **"स पर्यगाच्छुक्रमकायम" (वह परमात्मा अत्यन्त उज्जवल और निराकार है):**

परमात्मा न केवल पवित्र और शुद्ध है, बल्कि उसका कोई आकार नहीं है। वह अकारण और निराकार है, जिसका कोई भौतिक रूप नहीं है। उसका स्वरूप पूरी तरह से प्रकाशमय (उज्जवल) है। इस तरह से परमात्मा का अस्तित्व निराकार और अपार है, जो सब कुछ समाहित करता है।

2. **"अव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्" (वह न तो किसी विकृति से ग्रस्त है, न दोषी है):**

परमात्मा दोष, विकृति, घाव, अपवित्रता और पाप से मुक्त है। वह शुद्ध और अविनाशी है, जिसे न कोई रोग लगता है, न ही कोई विकार उसे प्रभावित कर सकता है। उसके अस्तित्व में कोई बुराई, दोष या पाप नहीं है। यह दर्शाता है कि परमात्मा का रूप पूर्ण और निर्दोष है।

3. **"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू" (वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और स्वयं उत्पन्न होने वाला है):**

परमात्मा "कवि" (सर्वज्ञ) है, जो हर सत्य को जानता है। वह "स्वयम्भू" है, अर्थात वह स्वयं से उत्पन्न हुआ है, उसका अस्तित्व निराकार और स्वाभाविक है। उसे किसी भी सृष्टि या कारण की आवश्यकता नहीं है। उसकी सत्ता स्वयं ही पूर्ण और अटल है।

4. **"याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" (वह सत्य के अनुसार ब्रह्म के अर्थ को व्याख्यायित करता है):**

परमात्मा सृष्टि और जीवन के गहरे अर्थ को सत्य के अनुसार बताता है। वह शाश्वत ज्ञान का वाहक है और हर एक प्राणी को ब्रह्म के सत्य के मार्ग पर चलने के लिए निर्देशित करता है। वह जो भी कहता है, वह सत्य है और उस सत्य को वह शाश्वत और अनंत दृष्टिकोण से व्याख्यायित करता है। वह अपने ज्ञान से प्राणी को अवगत कराता है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

आदि शंकराचार्य ने इस श्लोक में परमात्मा के अद्वितीय रूप को व्यक्त किया है। शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक परमात्मा के निराकार, शुद्ध और अविनाशी रूप का प्रतिपादन करता है। वह न तो किसी रूप में बंधता है, न किसी भौतिक अस्तित्व से प्रभावित होता है। वह स्वयं से उत्पन्न होता है और उसका अस्तित्व अविनाशी और असीमित है। वह सर्वज्ञ है और सृष्टि के प्रत्येक तत्व का गहन और सत्य ज्ञान प्रदान करता है।

शंकराचार्य के अनुसार, परमात्मा का ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है, और यह ज्ञान प्रत्येक प्राणी को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। यह श्लोक जीवन के गहरे अर्थ को समझने का एक प्रयास है, जो हमें आत्मा के दिव्य रूप से जोड़ता है।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **निर्विकार और शुद्ध अस्तित्व का महत्व:**
यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि परमात्मा और आत्मा का स्वरूप निराकार, शुद्ध और निर्विकार है। हमें भी जीवन में शुद्धता और निराकारता की ओर अग्रसर होना चाहिए, जहां हम भौतिक रूपों और विकृतियों से ऊपर उठकर दिव्यता की पहचान करें।

2. स्वयं की शाश्वतता:
परमात्मा का रूप शाश्वत है और वह स्वयं उत्पन्न होने वाला है। यह हमें यह सिखाता है कि आत्मा भी शाश्वत और अविनाशी है। हमें अपनी आत्मा की शाश्वतता को समझना चाहिए और भौतिक अस्थिरता से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

3**. सर्वज्ञता और ज्ञान:**
परमात्मा सर्वज्ञ है और वह सभी रहस्यों का ज्ञाता है। इसी तरह, हमें भी ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए और जीवन के गहरे अर्थ को समझने का प्रयास करना चाहिए। ज्ञान ही आत्मिक उन्नति का मार्ग है।

निष्कर्ष:
यह श्लोक परमात्मा की निराकारता, शुद्धता और शाश्वतता का गहराई से वर्णन करता है। वह सर्वज्ञ है और हर तत्व को सत्य के रूप में देखता है। इस श्लोक का अध्ययन करने से हम आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होते हैं और परमात्मा के अद्वितीय गुणों का अनुभव करते हैं। यह हमें शांति, शुद्धता और दिव्यता की ओर मार्गदर्शन करता है।

मंत्र-9

"अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥"

जो लोग अज्ञान की साधना करते हैं,
वे अंधकार के मार्ग में प्रवेश करते हैं।
लेकिन जो विद्या में लीन रहते हैं,
उनके लिए भी अज्ञान का अंधकार गहरा हो जाता है।

मूल शब्दार्थ:
1. **अन्धं तमः**: अंधकार और अज्ञान का मार्ग। यहाँ "अन्धं" से तात्पर्य अज्ञान और "तमः" से तात्पर्य अंधकार या अज्ञान के अंधकार से है।2. **प्रविशन्ति**: प्रवेश करते हैं। यह क्रिया प्रकट करती है कि व्यक्ति किसी स्थान या स्थिति में प्रवेश करता है।3. **येऽविद्यामुपासते**: जो लोग अविद्या (अज्ञान) की उपासना करते हैं, अर्थात जो ज्ञान से परे रहते हैं।4. **ततो भूय इव**: तब, फिर, अधिक अंधकार में, या अज्ञान के अंधकार में।5. **ते तमो**: वे और भी अधिक अंधकार में जाते हैं। यहाँ "ते" उन लोगों को संदर्भित करता है, जो विद्याहीन रहते हैं।6. **य उ विद्यायां रताः**: जो लोग विद्या (ज्ञान) में रत रहते हैं, या जो ज्ञान की साधना में लगे होते हैं

भावार्थ:
यह श्लोक जीवन में ज्ञान और अज्ञान के अंतर को स्पष्ट करता है। यहाँ पर "अविद्या" (अज्ञान) और "विद्या" (ज्ञान) के बीच एक गहरी अंतर की चर्चा की गई है।
1. **"अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते"**
जो लोग अज्ञान का अनुसरण करते हैं, वे अंधकार में प्रवेश करते हैं। अज्ञान, जो सत्य से परे होता है, व्यक्ति को असत्य और भ्रम की स्थिति में डालता

है। यह अज्ञान उसकी आत्मा और मस्तिष्क को भ्रष्ट करता है। अज्ञानता ही आत्मा के बंधन का कारण है और वही जीवन में अंधकार का कारण बनती है।

2. "ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः"

इसके विपरीत, जो लोग ज्ञान (विद्या) में रत होते हैं, वे और भी गहरे अंधकार में फंसते हैं। यहाँ यह कहा जा रहा है कि जो लोग केवल विद्या में लीन होते हैं, परंतु उसका सही उपयोग नहीं करते, वे भी अपने जीवन में अधिक भ्रम और अंधकार का अनुभव करते हैं। इसका अर्थ यह है कि शुद्ध और सही ज्ञान की प्राप्ति के बिना केवल विद्या का भटकाव और गलत दिशा में होना भी व्यक्ति को अंधकार की ओर ले जाता है।

व्याख्या:

इस श्लोक में ध्यान आकर्षित करने वाला विषय यह है कि केवल "अविद्या" और "विद्या" ही व्यक्ति के जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं।

अविद्या (अज्ञान) के मार्ग पर चलने वाले लोग पूरी तरह से अंधकार में डूबते हैं क्योंकि वे अपने जीवन के उद्देश्य को नहीं समझते। वे वास्तविकता से दूर होते हैं और भ्रम में फंसे रहते हैं। यह जीवन में उन्नति और आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होने की बजाय अस्तित्व के उद्देश्य से भटकने का कारण बनता है।

वहीं, विद्या (ज्ञान) का मार्ग सच्चे अर्थों में आत्मज्ञान की ओर ले जाता है, लेकिन केवल विद्याओं का अभ्यास और एकाग्रता पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसका सही दिशा में उपयोग होना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति ने केवल शास्त्रों, विद्याओं या बौद्धिक ज्ञान को आत्मसात किया, लेकिन उनका जीवन में सही उपयोग नहीं किया, तो वह भी भ्रमित हो सकता है और अपने मार्ग से भटक सकता है। इस श्लोक में यह चेतावनी दी गई है कि

केवल शब्दों और अवधारणाओं में न रुकें, बल्कि ज्ञान के वास्तविक उद्देश्य को समझने की कोशिश करें।

आदि शंकराचार्य का भाष्य:

आदि शंकराचार्य इस श्लोक में ज्ञान और अज्ञान के भेद को स्पष्ट करते हैं। उनका मानना था कि ज्ञान ही आत्मा के बंधनों को खोलता है और अज्ञान ही आत्मा के बंधनों का कारण होता है। शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक हमें यह बताता है कि किसी भी प्रकार का केवल बौद्धिक ज्ञान या शास्त्रों का अध्ययन हमें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति की ओर नहीं ले जा सकता। यदि हम उस ज्ञान को जीवन में सही तरीके से लागू नहीं करते, तो हम उस ज्ञान के बजाय अंधकार में और अधिक गहरे उतर जाते हैं।

आदि शंकराचार्य ने यह भी कहा है कि शुद्ध ज्ञान वह है जो आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने में मदद करता है और आत्मा के परम सत्य की पहचान करता है। इस श्लोक में चेतावनी दी गई है कि यदि हम केवल काव्य, साहित्य या शास्त्रों का अध्ययन करें, लेकिन उनके वास्तविक उद्देश्य को न समझें, तो हम और अधिक भ्रमित हो सकते हैं।

निष्कर्ष:

यह श्लोक जीवन में सच्चे ज्ञान और अज्ञान के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है। यह हमें चेतावनी देता है कि केवल विद्या या बौद्धिक ज्ञान को आत्मसात करना पर्याप्त नहीं है। हमें उस ज्ञान को सही दिशा में और सत्य की ओर ले जाने के लिए उपयोग करना चाहिए। शुद्ध और वास्तविक ज्ञान आत्मा के परम सत्य की पहचान में सहायक होता है, जबकि अज्ञान जीवन को भ्रमित और अंधकारमय बना देता है।

मंत्र-10

"अन्यदेवाहुर्विद्यया, अन्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां, ये नस्तद्विचचक्षिरे।"

कृपया ध्यान दें, जो लोग ज्ञान की साधना करते हैं,
वे आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होते हैं।
जो लोग अज्ञान में उलझते हैं, वे भ्रमित हो जाते हैं,
यह अंतर केवल प्रज्ञावान ही समझ सकते हैं।

मूल शब्दार्थ:
1. **अन्यद**: दूसरा, अन्य।2. **एवाहु**:: उन्होंने कहा।3. **विद्यया**: विद्या (ज्ञान) द्वारा।4. **अन्यद**: दूसरा, अन्य।5. **अहुरविद्यया:** अविद्या (अज्ञान) द्वारा।6. **इति:** इस प्रकार।7. **शुश्रुम:** हमने सुना।8. **धीराणां**: प्रज्ञावान (जो ज्ञान में गहरे होते हैं)।9**. ये:** जो लोग।10. **नस्**: हम (न हम)।11. **तद्विचचक्षिरे**: हमें नहीं समझा। (यह संदर्भित करता है कि जो लोग गहरे ज्ञान में होते हैं, वे इन दोनों के अंतर को समझते हैं, जबकि हम नहीं समझ पाते।)

भावार्थ:
यह श्लोक विद्या (ज्ञान) और अविद्या (अज्ञान) के बीच के भेद को स्पष्ट करता है। शास्त्रों में यह कहा गया है कि कुछ लोग ज्ञान को जानते हैं, जबकि कुछ लोग अज्ञान में डूबे रहते हैं। इन दोनों के बीच का अंतर साधारण मानव को समझ में नहीं आता, लेकिन जो लोग प्रज्ञावान होते हैं, वे इस अंतर को समझ सकते हैं।

1. "अन्यदेवाहुर्विद्यया, अन्यदाहुरविद्यया"

यहाँ पर कहा गया है कि कुछ लोग विद्या (ज्ञान) को उपासते हैं, जबकि कुछ लोग अविद्या (अज्ञान) को। विद्या वह है जो आत्मा की वास्तविकता और ब्रह्म के साथ एकत्व का बोध कराती है, जबकि अविद्या वह है जो जीवन को भ्रमित और अंधकारमय बनाती है।

2. "इति शुश्रुम धीराणां, ये नस्तद्विचचक्षिरे"

यह श्लोक बताता है कि हमने यह सब प्रज्ञावान लोगों से सुना है, जो दोनों के अंतर को भली-भांति समझते हैं। उन लोगों की दृष्टि में, यह ज्ञान और अज्ञान का भेद स्पष्ट होता है, लेकिन साधारण लोगों को इस अंतर को समझने में कठिनाई होती है। वे इसे सही ढंग से ग्रहण नहीं कर पाते।

इस श्लोक का उद्देश्य यह है कि हम केवल शास्त्रों या शब्दों में न रुकें, बल्कि उस ज्ञान को आत्मसात करें जो हमारे जीवन को सच्चाई के मार्ग पर ले जाए। यह श्लोक ज्ञान और अज्ञान के अद्वितीय अंतर को समझाने की कोशिश करता है, जो साधारण व्यक्ति के लिए एक गूढ़ विषय है।

व्याख्या:

यह श्लोक विद्या और अविद्या के विषय में गहरे अंतर्दृष्टि की ओर संकेत करता है।

1. **"अन्यदेवाहुर्विद्यया"**

विद्या का अनुसरण करने वाले लोग सत्य और आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होते हैं। यह ज्ञान उन्हें ब्रह्म और आत्मा के अद्वितीय स्वरूप को समझने की क्षमता देता है।

2. "अन्यदाहुरविद्यया"

अविद्या, अर्थात अज्ञान, वह मार्ग है जो भ्रम और अंधकार की ओर ले जाता है। यह जीवन में सत्य की पहचान को मिटा देता है और व्यक्ति को भ्रमित करता है।

3. "इति शुश्रुम धीराणां"

यह श्लोक बताता है कि इस अंतर को समझने के लिए एक गहरी अंतर्दृष्टि और साधना की आवश्यकता होती है, जो केवल प्रज्ञावान लोग ही कर सकते हैं। साधारण लोग इसे नहीं समझ पाते और भ्रमित रहते हैं।

4. "ये नस्तद्विचचक्षिरे"

साधारण व्यक्ति, जो ज्ञान के गहरे क्षेत्र से अनजान होते हैं, उन्हें यह अंतर स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता। यह श्लोक यह बताता है कि जब तक किसी व्यक्ति ने सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं की, तब तक वह इस अंतर को पूरी तरह से समझने में असमर्थ रहेगा।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

आदि शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक ज्ञान और अज्ञान के बीच की गहरी समझ को व्यक्त करता है। वे कहते हैं कि "विद्या" वह है जो आत्मा और परमात्मा के एकत्व को समझाती है और जो "अविद्या" है, वह मनुष्य को संसार के भ्रम में उलझाए रखती है। शंकराचार्य के अनुसार, शास्त्रों का सही अर्थ तब ही समझ में आता है जब व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के बीच के अंतर को समझ लेता है।

आदि शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक का अर्थ यह है कि शास्त्रों और उपनिषदों का सही अध्ययन और गहन ध्यान हमें यह समझने में मदद करता है कि ज्ञान और अज्ञान का अंतर केवल बौद्धिक विचार से नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभव से ही समझा जा सकता है। शंकराचार्य यह भी बताते हैं कि जिन लोगों ने इस अंतर को समझ लिया है, वे जीवन को सही दिशा में मार्गदर्शन कर सकते हैं, जबकि अन्य लोग इस अंतर को नहीं समझ पाते।

निष्कर्ष:
यह श्लोक ज्ञान और अज्ञान के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। यह हमें सिखाता है कि केवल शास्त्रों या विचारों में न रुकें, बल्कि उस ज्ञान को सही दिशा में आत्मसात करें जो आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीय सत्य को प्रकट करता है। यह श्लोक हमें यह भी चेतावनी देता है कि बिना गहरे ध्यान और प्रज्ञा के हम जीवन के सही उद्देश्य को समझ नहीं सकते और अज्ञान की ओर बढ़ सकते हैं।

मंत्र-11

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतमश्नुते।"

जो व्यक्ति विद्या और अविद्या को समझे,
वह मृत्यु से पार कर,
अमरता का अनुभव करता है।
अविद्या से मुक्ति पाकर वह जीवन के
सच्चे सत्य को जानता है,
और विद्या के द्वारा आत्मज्ञान की अमृत अवस्था में पहुंचता है।

मूल शब्दार्थ:
1. **विद्या**: ज्ञान, यहाँ आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान को दर्शाता है, जो जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य है।2. **अविद्या**: अज्ञान, जो जीवात्मा को भ्रम और संसार के बंधन में बांधता है।3. **यस्तद्वेद:** जो व्यक्ति इन दोनों (विद्या और अविद्या) का ज्ञान करता है।4. **उभयं:** दोनों।5. **सह**: साथ।6. **अविद्यया**: अज्ञान से।

7. **मृत्युम्:** मृत्यु।8. **तीर्त्वा:** पार करते हुए, पार करके 9. **विद्यया**: ज्ञान से। 10. **अमृतम्:** अमरता, मृत्यु के पार की स्थिति, आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त चिरस्थायी जीवन।

भावार्थ:

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि जो व्यक्ति "विद्या" (ज्ञान) और "अविद्या" (अज्ञान) दोनों का सही रूप से समझता है, वह मृत्यु को पार कर अमरता को प्राप्त करता है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति इन दोनों के बीच के अंतर को समझता है और इनका सही तरीके से उपयोग करता है, वह आत्मज्ञान की स्थिति में पहुंचता है और जीवन के अंतिम सत्य को समझता है।

1. "विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंसह"

जो व्यक्ति "विद्या" और "अविद्या" दोनों का ज्ञान करता है, वह जीवन और मृत्यु के रहस्यों को समझ सकता है। विद्या केवल बौद्धिक ज्ञान से परे है, यह आत्मज्ञान और परमात्मा के साथ एकता का बोध कराती है। अविद्या या अज्ञान वह स्थिति है जो जीवन को भ्रमित करती है और व्यक्ति को संसार के बंधनों में बांधती है।

2. **"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतमश्नुते"**

अज्ञान के माध्यम से मृत्यु के बंधन से पार होने का संदर्भ यह है कि जब व्यक्ति अविद्या से मुक्त हो जाता है, तो वह मृत्यु के बंधन को पार करता है। जबकि, "विद्या" (आध्यात्मिक ज्ञान) के माध्यम से वह अमृत प्राप्त करता है, अर्थात वह मृत्यु के पार जाता है और चिरस्थायी जीवन (आध्यात्मिक अमरता) को प्राप्त करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि ज्ञान और अज्ञान के बीच के अंतर को समझना आवश्यक है। बिना अज्ञान को समझे और उससे मुक्त हुए, केवल ज्ञान का

पालन करने से कोई लाभ नहीं होता। दोनों के सही संतुलन से व्यक्ति आत्मज्ञान की स्थिति में पहुंचता है।

व्याख्या:

इस श्लोक में विद्या (ज्ञान) और अविद्या (अज्ञान) का मिलाजुला स्वरूप दिखाया गया है। यह श्लोक बताता है कि एक व्यक्ति को इन दोनों के बीच का भेद समझना चाहिए।

1. विद्या केवल ज्ञान नहीं है, बल्कि यह आत्मा की वास्तविकता, ब्रह्म के साथ एकत्व और समग्र सत्य का बोध कराती है। यह वह ज्ञान है जो जीवन के उद्देश्य को समझने में सहायक होता है।

2. अविद्या या अज्ञान, संसारिक भ्रम, मनुष्य के मानसिक और शारीरिक बंधनों का कारण है। यह व्यक्ति को उसकी वास्तविकता से दूर ले जाता है और उसे असत्यमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

इस श्लोक का मुख्य उद्देश्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति दोनों का सही ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह जीवन के सत्य को जानता है और उसके भीतर आत्मसाक्षात्कार का प्रकाश उत्पन्न होता है। इसके माध्यम से व्यक्ति मृत्यु के बंधन को पार करता है और सच्चे अमरत्व को प्राप्त करता है, जो किसी अन्य सांसारिक अमरता से कहीं उच्च है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

आदि शंकराचार्य ने इस श्लोक में विद्या और अविद्या के संबंध को एक गहरे आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझाया। उनके अनुसार, विद्या वह ज्ञान है जो आत्मा और परमात्मा के एकत्व को समझाता है, और अविद्या वह स्थिति है जो हमें संसार के भ्रम में बांधकर मृत्यु के बंधन में डाल देती है।

आदि शंकराचार्य ने यह भी कहा कि, जब कोई व्यक्ति इन दोनों के बीच के अंतर को समझ लेता है, तब वह अविद्या से उबरकर आत्मज्ञान की अवस्था में प्रवेश करता है। अविद्या को पार करना मृत्यु के बंधन से मुक्ति है और विद्या के द्वारा प्राप्त अमृत चिरस्थायी, आत्मिक अमरता है। वे यह भी बताते हैं कि जब तक हम आत्मज्ञान के सत्य को नहीं जान पाते, तब तक हम अविद्या के बंधनों में बंधे रहते हैं।

निष्कर्ष:

यह श्लोक विद्या और अविद्या के अंतर को समझाने में मदद करता है। यह हमें बताता है कि केवल ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अविद्या का सही रूप से समझना और उससे मुक्त होना आवश्यक है। दोनों का सही संतुलन और समझ हमें आत्मज्ञान की ओर मार्गदर्शन करता है, और यही अंततः मृत्यु के बंधन से मुक्त होकर चिरस्थायी अमृत (आध्यात्मिक अमरता) की प्राप्ति का मार्ग है।

मंत्र-12

"अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।"

जो लोग अज्ञान में रत रहते हैं,
वे अंधकार में प्रवेश करते हैं।
जो बाह्य ज्ञान में उलझे रहते हैं,
वे और अधिक अंधकार में फंस जाते हैं।

मूल शब्दार्थ:

1. **अन्धं:** अंधकार, अंधा।2. **तमः**: अज्ञान, अंधकार।3. **प्रविशन्ति**: प्रवेश करते हैं।4. **ये**: जो लोग।5. **अविद्याम्:** अज्ञान, वह ज्ञान जो सत्य और आत्मा के बारे में अज्ञात रखता है।6. **उपासते**: उपासना करते हैं, पूजा करते हैं।7. **ततो**: तब, इसके बाद।8. **भूय**: अधिक, फिर से।9. **इव**: जैसे, जैसे कि।10**. ते:** वे लोग।11. **तमः**: अंधकार।12. **य**: जो।13. **विद्यायाम्:** ज्ञान, यहाँ आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान।14. **रताः**: संलग्न होते हैं, आनंदित होते हैं।

भावार्थ:

यह श्लोक विद्या और अविद्या के प्रभावों को स्पष्ट करता है।

1**. "अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते"**

यह भाग बताता है कि जो लोग अज्ञान (अविद्या) का पालन करते हैं, वे अंधकार में प्रवेश करते हैं। अज्ञान ही व्यक्ति को सत्य से दूर रखता है और उसे भ्रम में डालता है। ऐसे लोग जीवन की वास्तविकता से अज्ञात रहते हैं और संसार के भ्रम में उलझे रहते हैं।

2. "ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः"

इसके बाद, यह श्लोक यह कहता है कि जो लोग केवल बाह्य, सांसारिक विद्याओं (अर्थात सांसारिक या बौद्धिक ज्ञान) में रत होते हैं, वे भी अज्ञान के अंधकार में और गहरे प्रवेश करते हैं। यहाँ पर यह संकेत किया गया है कि केवल बाह्य ज्ञान (अर्थात केवल संसारिक विज्ञान या शास्त्रों का अध्ययन) आत्मज्ञान की स्थिति में नहीं ले जाता, बल्कि इसके विपरीत यह अधिक अंधकार में घेरता है।

वास्तव में यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि केवल बाह्य या बौद्धिक ज्ञान से कोई लाभ नहीं है, जब तक कि व्यक्ति आत्मज्ञान (ब्रह्मज्ञान) में रत नहीं

होता। अज्ञान (अविद्या) के अंधकार में गिरने से हम जीवन के सत्य से वंचित रहते हैं, और केवल बाह्य ज्ञान प्राप्त कर हम और भी भ्रमित हो सकते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक हमारे जीवन के उद्देश्य और सत्य को जानने की दिशा में गहरे अंतर्दृष्टि की ओर इशारा करता है।

1. **अविद्या (अज्ञान) और विद्यायां रति:**

अविद्या (अज्ञान) वह स्थिति है जो व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप (आत्मा) और ब्रह्म (सर्वव्यापक परमात्मा) से अज्ञात रखती है। अविद्या के कारण, व्यक्ति जीवन के उद्देश्य से दूर रहता है, और वह संसार के भ्रम में उलझता जाता है।

विद्या (ज्ञान) से तात्पर्य है वह ज्ञान जो आत्मा और ब्रह्म के बीच के संबंध को पहचानने में मदद करता है। यह ज्ञान जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझने और आत्मसाक्षात्कार की ओर मार्गदर्शन करने वाला होता है। जो लोग इस प्रकार के सत्य ज्ञान में रत होते हैं, वे अंधकार से बाहर आते हैं और ब्रह्मज्ञान की स्थिति में पहुंचते हैं।

2. अज्ञान के अंधकार में बढ़ना:

श्लोक में यह कहा गया है कि जो लोग केवल बाह्य ज्ञान (जैसे शास्त्रों, विज्ञान आदि का अध्ययन) में रत रहते हैं, वे इस ज्ञान से वास्तविक जीवन की सत्यता और ब्रह्म के अद्वितीय सत्य को समझने में असमर्थ रहते हैं। ऐसे लोग अंततः अधिक अंधकार में प्रवेश करते हैं, क्योंकि वे आत्मज्ञान से वंचित रहते हैं।

3. आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता:

इस श्लोक का मुख्य संदेश है कि बाह्य या बौद्धिक ज्ञान हमें सत्य से नहीं जोड़ता, जबकि आत्मज्ञान (आध्यात्मिक ज्ञान) ही हमें वास्तविकता और ब्रह्म के साथ एकता का बोध कराता है।

आदि शंकराचार्य का भाष्य:

आदि शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक यह बताता है कि अविद्या (अज्ञान) केवल एक भ्रम है, और यह सत्य से हटा देती है। शंकराचार्य ने स्पष्ट किया है कि केवल विद्या (आध्यात्मिक ज्ञान) ही व्यक्ति को वास्तविकता की ओर मार्गदर्शन करती है, और यह संसार के भ्रम से मुक्ति का माध्यम है। वे कहते हैं कि विद्या और अविद्या दोनों के बीच का भेद समझना आवश्यक है, और केवल आत्मज्ञान (आध्यात्मिक ज्ञान) ही हमें सच्चे प्रकाश की ओर मार्गदर्शन करता है।

निष्कर्ष:

यह श्लोक यह दर्शाता है कि केवल बाह्य ज्ञान से कोई लाभ नहीं है, जब तक कि वह आत्मज्ञान (आध्यात्मिक ज्ञान) से जुड़ा न हो। यह हमें यह सिखाता है कि अविद्या (अज्ञान) के अंधकार में रहने से हम अपने जीवन के उद्देश्य और सत्य से दूर रहते हैं। वास्तविक ज्ञान वह है जो आत्मा और परमात्मा के अद्वितीय सत्य को जानने में मदद करता है।

मंत्र-13

"अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसंभवात।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥"

सृजन विनाश के मध्य छिपा, सत्य वही ब्रह्म महान।
धीर पुरुष ने हमें सिखाया, यही परम ज्ञान विधान।
दृश्य जगत है सम्भव का रूप, अदृश्य असम्भव की बात।
दोनों में ही सत्य निहित है, यही सिखाता वेद प्रभात।
ध्यान योग से जानो इसका, साक्षी बनो आत्म महान।
सृजन-विनाश के बंधन से, मुक्त करो यह जीव निदान।

मूल शब्दार्थ:
1. **अन्यत्:** भिन्न।2. **देवाः**: ज्ञानी लोग।3. **आहुः**: कहते हैं।4. **सम्भवात्**: सृजन या जन्म से।5. **असम्भवात्**: विनाश या अदृश्यता से।6. **इति शुश्रुम**: हमने सुना है।7. **धीराणां**: ज्ञानी पुरुषों से।8. **ये नः** तद् विचचिक्षिरे: जिन्होंने हमें यह समझाया।

भावार्थ:
ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि सृजन (सम्भव) और विनाश (असम्भव) के परिणाम अलग-अलग हैं। सृजन हमें एक अलग अनुभव प्रदान करता है, जबकि विनाश हमें एक और गहन सत्य की ओर ले जाता है। यह ज्ञान हमें धीर पुरुषों द्वारा प्राप्त हुआ है।

व्याख्या:
1. सम्भव और असम्भव का तात्पर्य:
सम्भव (सृजन): भौतिक जगत का निर्माण, जो दृश्य और परिवर्तनशील है।
असम्भव (विनाश): दृश्य वस्तुओं का लोप, जो हमें अदृश्य, अचल और शाश्वत सत्य की ओर ले जाता है।
2. **भिन्नता का अनुभव:**

सृजन हमें संसार की अस्थिरता और भौतिक अनुभव देता है।
विनाश हमें आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत सत्य की ओर ले जाता है।

3. ज्ञानी पुरुषों का योगदान:

धीर पुरुष (ऋषि और ज्ञानी) इन दोनों स्थितियों के भेद और महत्व को समझाकर मोक्ष के मार्ग की ओर संकेत करते हैं।
उनके ज्ञान से ही हम यह समझ पाते हैं कि संसार के दोनों पहलू (सृजन और विनाश) परमात्मा की अभिव्यक्ति हैं।

4. अध्यात्मिक दृष्टिकोण:

सम्भव और असम्भव, दोनों ब्रह्म के ही रूप हैं।
यह मंत्र हमें सिखाता है कि न तो सृजन को त्यागना चाहिए और न ही विनाश से भयभीत होना चाहिए।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

शंकराचार्य इस मंत्र को अद्वैत वेदांत की दृष्टि से समझाते हैं।
"सम्भव" का तात्पर्य संसार के दृश्य और प्रकट रूप से है। यह ब्रह्म के सगुण स्वरूप का प्रतीक है।
"असम्भव" का तात्पर्य ब्रह्म के निर्गुण और अव्यक्त स्वरूप से है।
उन्होंने कहा कि ज्ञानी इन दोनों को एक ही सत्य के रूप में देखते हैं और भेदभाव से ऊपर उठ जाते हैं।

निष्कर्ष:

यह मंत्र सृजन और विनाश के बीच के संबंध को समझने का आह्वान करता है। यह हमें बताता है कि ज्ञानी पुरुषों से प्राप्त शिक्षा के माध्यम से ही हम इन दोनों स्थितियों के सत्य को जान सकते हैं और आत्मा के शाश्वत स्वरूप को पहचान सकते हैं। यह ज्ञान ही मोक्ष का द्वार खोलता है।

मंत्र-14

"संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युम तीर्त्वा सम्भुत्याऽमृतमश्नुते॥"

सृजन-विनाश का मर्म जान, साधक सत्य पाता।
विनाश से मृत्यु पार करे, सृजन अमृत दिलवाता।
सगुण और निर्गुण का संगम, मोक्ष का है द्वार।
ज्ञानी पुरुष यही बतलाते, यही ब्रह्म विचार।
संभूति से जगत का दर्शन, विनाश से शांति पाए।
दोनों को जो समझ सके, वह सत्य पद पर जाए।

मूल शब्दार्थ:
1. **संभूतिं:** सृजन, प्रकृति, और सगुण ब्रह्म।2. **विनाशं**: विनाश, प्रलय, या निर्गुण ब्रह्म।3. **यः** तद् वेद: जो इन दोनों को जानता है।4. **उभयं सह**: दोनों का ज्ञान एक साथ।5. **विनाशेन**: विनाश के माध्यम से।6. **मृत्युम तीर्त्वा**: मृत्यु को पार करके।7. **संभुत्या**: सृजन (प्रकृति) के माध्यम से।8. **अमृतम् अश्नुते**: अमरत्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

भावार्थ:
जो व्यक्ति सृजन (संभूति) और विनाश (विनाश) दोनों के वास्तविक स्वरूप को समझता है, वह विनाश के माध्यम से मृत्यु को पार कर लेता है और सृजन के माध्यम से अमरत्व प्राप्त करता है।

व्याख्या:

1. **संभूति और विनाश का तात्पर्य:**
संभूति (सृजन): यह सृष्टि और ब्रह्म के सगुण रूप का प्रतीक है।
विनाश (प्रलय): यह विनाश और ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का प्रतीक है।

2. उभय का ज्ञान:
सच्चा ज्ञान वही है जो सृजन और विनाश, दोनों को एक साथ समझे।
केवल सृजन (संभूति) का ध्यान लगाना भौतिकता तक सीमित है, और केवल विनाश (विनाश) का ध्यान लगाना आध्यात्मिक शून्यता में खो जाना है।

3. विनाश से मृत्यु का अतिक्रमण:
मृत्यु (अज्ञान) को विनाश (निर्गुण ब्रह्म) के ध्यान से पार किया जा सकता है।
यह आत्मा की अमरता को समझने की ओर ले जाता है।

4. **संभूति से अमृतत्व की प्राप्ति:**
सृजन के माध्यम से ब्रह्म के सगुण स्वरूप का अनुभव किया जाता है।
यह अनुभव व्यक्ति को आनंद और अमरत्व की अनुभूति देता है।

5. सगुण और निर्गुण ब्रह्म की एकता:
यह मंत्र सिखाता है कि सगुण और निर्गुण ब्रह्म, दोनों ही एक ही सत्य के अलग-अलग पहलू हैं।
दोनों का ज्ञान हमें मोक्ष और अमृतत्व की ओर ले जाता है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>
शंकराचार्य ने इस मंत्र के माध्यम से अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को स्पष्ट किया: सगुण ब्रह्म (संभूति) और निर्गुण ब्रह्म (विनाश) दोनों को जानना आवश्यक है।

केवल सगुण ब्रह्म की पूजा करने से मोक्ष संभव नहीं है।
केवल निर्गुण ब्रह्म का चिंतन भी पूर्ण नहीं है, क्योंकि सगुण ब्रह्म का अनुभव साधक को प्रेरणा और ध्यान की स्थिरता देता है।
जब साधक दोनों को एक साथ जान लेता है, तब वह मृत्यु (भौतिक जगत के बंधन) से मुक्त होकर अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **संतुलन की शिक्षा:**

यह मंत्र हमें सिखाता है कि जीवन में संतुलन आवश्यक है। केवल भौतिकता या केवल अध्यात्म में खो जाना अधूरा है।

2. **समग्र दृष्टिकोण:**

सृजन और विनाश दोनों जीवन के सत्य हैं। दोनों का समग्र ज्ञान हमें संतोष और मोक्ष की ओर ले जाता है।

3. **एकता का दर्शन:**

सगुण और निर्गुण ब्रह्म, भौतिक और आध्यात्मिक, सभी एक ही सत्य के दो रूप हैं।

निष्कर्ष:

यह मंत्र वेदांत के उस गूढ़ सत्य को प्रकट करता है, जिसमें सगुण और निर्गुण ब्रह्म का संयुक्त ज्ञान मोक्ष का मार्ग है। दोनों के महत्व को समझकर साधक अमृतत्व (अमरता) को प्राप्त कर सकता है।

<u>मंत्र-15</u>

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥"

हिरण्यमय जो सत्य छिपाए, वह आवरण अब हट जाए।
सूर्यदेव से प्रार्थना मेरी, सत्य प्रकाश मुझे दिखलाए॥
माया का परदा हट जाए, सत्य स्वरूप मुझे मिल जाए।
धर्म और सत्य के अनुयायी, दर्शन का अधिकार पाए॥
प्रकाश के इस मार्ग से चल, ब्रह्म का सत्य हमें दिखलाए।
जो अज्ञान से ढका हुआ है, वह सत्य स्वरूप प्रकट हो जाए॥

मूल शब्दार्थ:

1. **हिरण्मयेन**: स्वर्णमय, तेजस्वी। 2. **पात्रेण**: आवरण द्वारा, परदा। 3. **सत्यस्य**: सत्य के। 4. **अपिहितं**: ढका हुआ।5. **मुखम्:** मुख, स्वरूप। 6. **तत्त्वम्**: परम तत्व, सत्य। 7. **पूषन्**: सूर्यदेव, पोषक। 8. **अपावृणु**: खोलो, हटाओ। 9. **सत्यधर्माय**: सत्य और धर्म का पालन करने वाले के लिए। 10. **दृष्टये:** दर्शन के लिए, देखने हेतु।

भावार्थ:

सत्य का स्वरूप तेजस्वी आवरण से ढका हुआ है, जैसे स्वर्ण पात्र। साधक सूर्य (पूषन्) से प्रार्थना करता है कि इस आवरण को हटाएं ताकि सत्य और धर्म का अनुसरण करने वाले व्यक्ति को सत्य के दर्शन हो सकें।

व्याख्या:

1. **सत्य का स्वर्ण आवरण**:

यह स्वर्ण पात्र माया या भौतिक जगत का प्रतीक है, जो परम सत्य (ब्रह्म) को ढके हुए है।

माया अत्यंत सुंदर और आकर्षक है, लेकिन यह सत्य के अनुभव में बाधा डालती है।

2. **सूर्य की भूमिका:**
यहाँ सूर्य को "पूषन्" कहा गया है, जिसका अर्थ है पालनकर्ता।
सूर्यदेव को परम ब्रह्म के प्रतीक के रूप में पूजा जाता है, जो सत्य के दर्शन के माध्यम हैं।
3. **सत्य के दर्शन की आकांक्षा:**
साधक सत्य और धर्म के पथ पर अग्रसर है।
वह इस प्रार्थना के माध्यम से सत्य का अनुभव करने की गहन इच्छा प्रकट करता है।
4. **आध्यात्मिक संदर्भ:**
सत्य का आवरण केवल बाह्य जगत का मोह और अज्ञान है।
साधक को सत्य तक पहुंचने के लिए इस आवरण को हटाने का प्रयास करना चाहिए, जो ध्यान, भक्ति, और ज्ञान के माध्यम से संभव है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>
हिरण्मयेन पात्रेण: शंकराचार्य इसे माया के रूप में समझाते हैं, जो ज्ञान और सत्य को ढकती है।
सत्यस्य मुखम्: ब्रह्म का सच्चा स्वरूप, जो स्थूल दृष्टि से दिखाई नहीं देता।
पूषन् अपावृणु: यह सूर्यदेव से सत्य की पहचान कराने की प्रार्थना है।
सत्यधर्माय दृष्टये: सत्य और धर्म का अनुसरण करने वाला व्यक्ति ही इस सत्य को देखने योग्य बनता है।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:
1. माया से मुक्ति:
भौतिक सुख-सुविधाएँ और आकर्षण सत्य को छिपाते हैं।

हमें इनसे परे जाकर आत्मा के सत्य स्वरूप को पहचानने का प्रयास करना चाहिए।

2. सत्य और धर्म का पालन:

सत्य और धर्म के मार्ग पर चलने वाले ही ज्ञान और ब्रह्म के अनुभव के अधिकारी होते हैं।

3. आध्यात्मिक प्रार्थना:

यह मंत्र हमें आंतरिक रूप से शुद्ध और समर्पित बनने की प्रेरणा देता है।

निष्कर्ष:

यह मंत्र माया और सत्य के बीच के संबंध को स्पष्ट करता है। साधक की प्रार्थना यह दर्शाती है कि जब हम धर्म और सत्य का पालन करते हैं, तो ब्रह्म (परम सत्य) का अनुभव हमें अवश्य होता है। यह सत्य की खोज में समर्पण, प्रयास, और प्रार्थना की आवश्यकता को प्रकट करता है।

मंत्र-16

"पूषन्नेकर्षे यम् सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन समूह।
कल्याणतमं तत्ते पश्यामि यो सौ पुरुषः सो हमस्मि ॥"

हे स्वामिन !
हे आदिग्यानी !
हे सबके इश्वर !
हे शुद्ध भक्तों के लक्ष रूप !
हे प्रजापतियों के प्रिय !
कृपया हटा लीजिये तेज़

अपनी दिव्य किरण राशि का
मैं आपके आनंदमय रूप का दर्शन करना चाहता हूँ
मैं और आप ज्योति एवं सूर्य के संबंधों की भाँती हैं ||

मंत्र का अर्थ:

पूषन्नेकर्षे: यहाँ पूषन्नेकर्षे का अर्थ है कि "हे सूर्य, जो समस्त प्राणियों को पोषित करने वाले हो।" **पूष्ण** शब्द का अर्थ है पोषक या पालन करने वाला। यम् सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन समूह: जिस सूर्य के रश्मियों का व्यूह या समूह प्रजापति द्वारा रचित है। "**प्राजापत्य"** शब्द का अर्थ है प्रजापति, जो सृष्टि के पालनकर्ता और सृजनकर्ता होते हैं। इस भाग में सूर्य के रश्मियों के व्यवस्थित समूह का वर्णन किया जा रहा है। **कल्याणतमं तत्ते पश्यामि:** वह जो सबसे कल्याणकारी है, वही हमें दिखाई दे। यहाँ सूर्य के दिव्य स्वरूप और उसकी अनन्त ऊर्जा के बारे में बात हो रही है, जो सभी के लिए कल्याणकारी है। **यो सौ पुरुषः सो हमस्मि:** वह दिव्य पुरुष ही हम हैं, यही आत्मा का सत्य है। यह भाग आत्म-परिचय की ओर इशारा करता है, अर्थात सूर्य के समान दिव्य और शाश्वत स्वरूप के साथ हमारा आत्मा भी एक है।

विस्तृत व्याख्या और भाष्य:

1. पूषण (सूर्य) का दिव्य स्वरूप:

इस मंत्र में सूर्य को पूषन्नेकर्षे कहा गया है, जो सभी प्राणियों के पालनकर्ता और पोषक होते हैं। सूर्य को "पूष्ण" कहा जाता है क्योंकि वह जीवन के लिए आवश्यक ऊर्जा और ताप प्रदान करता है। बिना सूर्य की ऊर्जा के

जीवन संभव नहीं है, और सभी जीवित प्राणियों के अस्तित्व का आधार सूर्य की किरणों में है।

यह मंत्र हमें सूर्य के दिव्य और पोषक रूप को समझने की प्रेरणा देता है, जो न केवल भौतिक स्तर पर, बल्कि आध्यात्मिक रूप से भी जीवन की ऊर्जा का स्रोत है।

2. **प्राजापत्य रश्मियों का वर्णन:**

"प्राजापत्य व्यूह रश्मीन समूह" में सूर्य की रश्मियों का वर्णन किया गया है, जो प्रजापति द्वारा रचित हैं। प्रजापति, जो सृष्टि के निर्माता और पालनकर्ता हैं, ने सूर्य की रश्मियों के माध्यम से सृष्टि का संचालन किया।

यह दर्शाता है कि सूर्य का अस्तित्व सिर्फ एक भौतिक तत्त्व नहीं है, बल्कि यह सृष्टि के शाश्वत क्रम और जीवन के संरक्षण का प्रतीक है। सूर्य की रश्मियाँ प्रजापति की दिव्य शक्ति का प्रतिबिंब हैं, जो ब्रह्मांड में संतुलन और जीवन का निरंतर प्रवाह बनाए रखती हैं।

3. **कल्याणतमं (सर्वोत्तम कल्याणकारी स्वरूप):**

"कल्याणतमं तत्ते पश्यामि" का अर्थ है कि हम उस दिव्य और कल्याणकारी रूप को देख रहे हैं। यहाँ सूर्य को "कल्याणतम" कहा गया है, जो सभी के लिए शुभ और कल्याणकारी है।

सूर्य की ऊर्जा न केवल भौतिक रूप में जीवन के लिए आवश्यक है, बल्कि यह आध्यात्मिक रूप से भी जीवन को जागृत और शुद्ध करने का कार्य करती है। सूर्य के दर्शन से व्यक्ति को आध्यात्मिक शांति और ज्ञान की प्राप्ति होती है, जैसे सूर्य की रश्मियाँ अंधकार को दूर करती हैं, वैसे ही आत्मज्ञान अज्ञान के अंधकार को समाप्त करता है।

4. **हम और वह दिव्य पुरुष एक हैं:**

मंत्र के अंतिम भाग में कहा गया है, "यो सौ पुरुषः सो हमस्मि", अर्थात वह दिव्य पुरुष ही हम हैं। यहाँ पर सूर्य के रूप में जो दिव्य शक्ति है, वही हमारे

भीतर विद्यमान है। यह आत्मा के अद्वितीयता और ब्रह्म के साथ एकत्व की ओर संकेत करता है।

यह भाग हमें यह समझाता है कि हम और आत्मा, जो सूर्य के समान दिव्य और अमर है, एक ही हैं। आत्मा और सूर्य दोनों ही शाश्वत और अविनाशी हैं। यह ब्रह्म की अद्वितीयता की पुष्टि करता है, जिससे हर प्राणी उसी दिव्य सत्ता का अंश है।

आध्यात्मिक शिक्षा:

1. **सूर्य के दिव्य रूप का ध्यान:**

यह मंत्र हमें सूर्य को केवल भौतिक दृष्टि से न देखकर उसकी दिव्यता, शक्ति और शाश्वतता को समझने की प्रेरणा देता है। सूर्य का ध्यान हमारे जीवन में आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार कर सकता है, और हमें अपने जीवन में संतुलन और शांति प्राप्त करने में मदद कर सकता है।

2. **आत्म-परिचय:**

"यो सौ पुरुषः सो हमस्मि" का अर्थ है कि हमें यह समझना चाहिए कि हम केवल शारीरिक रूप से नहीं हैं, बल्कि हम उसी दिव्य आत्मा के रूप में हैं, जो सूर्य के समान है। इस सच्चाई को समझकर हम अपने जीवन में आध्यात्मिक जागरूकता और आत्मसाक्षात्कार की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

3. **दिव्य शक्ति के साथ एकत्व का अनुभव:**

यह मंत्र हमें यह सिखाता है कि सूर्य के दिव्य रूप में ही हम अपनी वास्तविकता को पहचान सकते हैं। जब हम यह समझते हैं कि हम उसी दिव्य सत्ता का हिस्सा हैं, तो हम सर्वव्यापी ब्रह्म के साथ एकत्व का अनुभव कर सकते हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा:

1. **प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान:**
सूर्य के द्वारा प्रदत्त ऊर्जा और जीवन के महत्व को समझते हुए, हमें प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सम्मान करना चाहिए। सूर्य की ऊर्जा न केवल भौतिक जीवन के लिए, बल्कि आध्यात्मिक और मानवता के कल्याण के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।
2. **आध्यात्मिक साधना की दिशा:**
आज के व्यस्त जीवन में जब हम आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन जीने की कोशिश करते हैं, तो इस मंत्र का ध्यान और सूर्य की दिव्यता को समझने से हम आध्यात्मिक शांति प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष:
ईशोपनिषद का यह 16वां मंत्र सूर्य के दिव्य रूप और उसकी शाश्वत ऊर्जा को प्रकट करता है, जो जीवन के सभी पहलुओं का पोषण करता है। सूर्य की ऊर्जा न केवल भौतिक जीवन के लिए आवश्यक है, बल्कि यह आध्यात्मिक ज्ञान और प्रकाश का भी स्रोत है। हमें इस दिव्य शक्ति के साथ एकत्व का अनुभव करना चाहिए और जीवन में संतुलन और शांति की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।

मंत्र-17

"वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर॥"

हे स्वामी !
शरीर तो नाशवान है,

जल कर भष्म हो जायेगा
प्राण वायु भी निकल कर
सम्रष्टि वायु में लिप्त हो जायेगी
बस रह जायेंगे
अपने किये हुए कर्मों के स्मरण
मुझे अपने यज्ञ रमों का स्मरण होता रहे
मैं यूँ ही यज्ञ कर्म करता रहूँ ||

मूल शब्दार्थ:

1. **वायुः**: प्राण वायु। 2. **अनिलम्**: शुद्ध वायु, ब्रह्म। 3. **अमृतम्**: अमर आत्मा। 4. **अथ**: तब। 5. **इदम्**: यह। 6. **भस्मान्तम्**: भस्म में परिणत होने वाला। 7. **शरीरम्**: शरीर। 8. **ॐ:** परम ब्रह्म का प्रतीक। 9. **क्रतो:** इच्छा, संकल्प। 10. **स्मर:** स्मरण कर। 11. **कृतं:** किए हुए कर्म।

भावार्थ:

यह मंत्र मृत्यु के क्षण में आत्मा, शरीर और कर्म के संबंध को प्रकट करता है।
प्राण वायु ब्रह्म में विलीन हो जाती है।
शरीर नश्वर है और अंत में भस्म हो जाता है।
आत्मा अमर है और केवल अपने कर्मों का फल साथ ले जाती है।
साधक अपनी चेतना को ब्रह्म में केंद्रित करते हुए अपने कर्मों और संकल्पों का स्मरण करता है।

व्याख्या:

1. **शरीर और आत्मा का भेद:**

शरीर नश्वर है, मृत्यु के बाद यह भस्म में बदल जाता है।
आत्मा अमर है और यह परम ब्रह्म (अनिलम्) का अंश है।

2. वायु और प्राण:

प्राण वायु शरीर को जीवंत बनाती है।
मृत्यु के समय, यह प्राण वायु ब्रह्म में वापस मिल जाती है।

3. स्मरण का महत्व:

"क्रतो स्मर, कृतं स्मर" का तात्पर्य है कि साधक को अपने संकल्प (सत्य-धर्म के प्रति) और कर्मों का स्मरण करना चाहिए।
यह स्मरण आत्मा को ब्रह्म की ओर ले जाने में सहायक होता है।

4. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

मृत्यु के समय आत्मा को अपने नश्वर शरीर और कर्मों के भेद को पहचानना चाहिए।
यह भक्ति और ध्यान से संभव है।

5. जीवन का सार:

शरीर केवल एक साधन है।
सच्चा जीवन आत्मा और कर्मों की पवित्रता में है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>

वायुरनिलम् अमृतम्: शंकराचार्य इसे प्राण (वायु) की ब्रह्म में वापसी के रूप में व्याख्या करते हैं।
भस्मान्तं शरीरम्: शरीर पंचतत्वों में विलीन हो जाता है।
ॐ क्रतो स्मर: मृत्यु के समय साधक को "ॐ" का स्मरण करना चाहिए, जो ब्रह्म का प्रतीक है।
कृतं स्मर: अपने कर्मों का स्मरण करके आत्मा को ब्रह्म से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **मृत्यु और जीवन का सत्य:**

शरीर नश्वर है; आत्मा अमर है।

मृत्यु के भय से मुक्त होकर, जीवन के उच्च उद्देश्य को समझना चाहिए।

2. **कर्म और संकल्प का महत्व:**

जीवन में किए गए कर्म और संकल्प ही मृत्यु के बाद आत्मा के साथ रहते हैं।

इसलिए जीवन में सद्कर्म और सही संकल्पों का पालन करना चाहिए।

3. स्मरण और ध्यान:

जीवन के अंतिम क्षणों में भगवान, सत्य, और अपने कर्मों का स्मरण आत्मा को शुद्ध करता है।

निष्कर्ष:

यह मंत्र मृत्यु के समय आत्मा की यात्रा और शरीर के नश्वर स्वभाव को दर्शाता है। यह हमें सिखाता है कि शरीर केवल एक साधन है, जबकि आत्मा और कर्म ही सत्य हैं। यह मंत्र हमें जीवन में सही कर्म करने और भगवान के प्रति समर्पित रहने की प्रेरणा देता है।

मंत्र 18

"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥"

हे अग्निसम शक्तिशाली इश्वर !
हे सर्वशक्तिमान !

मैं भूमि पर गिरकर बारम्बार प्रणाम करता हूँ,
आपके चरणों में नमन करता हूँ,
हे देव !
अपनी प्राप्ति के सुपथ पर बढ़ा लीजिये मुझे,
उन सब पापों से मुक्त कीजिये मुझे,
जो किये हैं मैंने पूर्व में
जिन्हें आप जानते हैं
मेरी प्रगति में कोई प्रतिबंधन न आये
आशीर्वाद दीजिये मुझे ||

मूल शब्दार्थ:

1. **अग्ने:** अग्निदेव, जो मार्गदर्शक हैं। 2. **नय**: ले चलो। 3. **सुपथा:** शुभ मार्ग, सद्मार्ग। 4. **राये:** धन, ऐश्वर्य, आध्यात्मिक संपत्ति। 5. **अस्मान्:** हमें। 6. **विश्वानि:** समस्त। 7. **देव: प्रभु,** ईश्वर। 8. **वयुनानि**: कर्म, मार्ग, ज्ञान। 9. **विद्वान्**: ज्ञानी, जो सब कुछ जानते हैं। 10. **युयोधि**: दूर करो। 11. **अस्मत्**: हमारे। 12. **जुहुराणम्**: छल-कपट, दोष, पाप। 13. **एनो:** पाप, अज्ञान। 14. **भूयिष्ठाम्**: अधिक से अधिक। 15. **ते**: तुम्हारे। 16. **नम**: प्रणाम। 17. **उक्तिं**: वचन। 18. **विधेम**: अर्पित करते हैं।

भावार्थ:

हे अग्निदेव, आप हमें शुभ और सत्य के मार्ग पर ले चलें। आप हमारे पाप और दोषों को दूर करें। हम आपकी उपासना करते हैं और आपके प्रति समर्पण की भावना रखते हैं।

व्याख्या:

1. **अग्नि का प्रतीकात्मक अर्थ:**
अग्नि को यहाँ केवल भौतिक अग्नि के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान और प्रकाश के प्रतीक के रूप में देखा गया है।
अग्नि मार्गदर्शक है, जो अज्ञान को जलाकर सत्य का प्रकाश फैलाती है।
2. **सुपथा की प्रार्थना:**
यह प्रार्थना व्यक्ति के शुभ मार्ग पर चलने की आकांक्षा को प्रकट करती है।
सुपथा वह मार्ग है जो आध्यात्मिक प्रगति, शांति, और मोक्ष की ओर ले जाता है।
3. **पाप और दोष का नाश:**
"युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो" में पाप और दोषों को दूर करने की प्रार्थना है।
यह जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने की आवश्यकता को इंगित करता है।
4. **ज्ञान का महत्व:**
"विश्वानि वयुनानि विद्वान्" में अग्नि को सर्वज्ञ कहा गया है।
यह दर्शाता है कि ईश्वर सभी कर्मों और मार्गों को जानने वाले हैं, और वही हमें सही दिशा में ले जा सकते हैं।
5. **प्रणाम और समर्पण:**
"भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम" में समर्पण और उपासना की भावना प्रकट होती है।
यह दर्शाता है कि ईश्वर की कृपा से ही मनुष्य अपने दोषों से मुक्त होकर सत्य का अनुभव कर सकता है।

<u>आदि शंकराचार्य का भाष्य:</u>
अग्नि को मार्गदर्शक के रूप में: शंकराचार्य ने अग्नि को आत्मा के मार्गदर्शक और शुद्धिकर्ता के रूप में व्याख्या की है।

सुपथा और कु-पथा: वह कहते हैं कि केवल ईश्वर ही हमें शुभ (सुपथा) और अशुभ (कुपथा) में भेद समझा सकते हैं।
पाप और दोष का नाश: शंकराचार्य ने इसे कर्मों के संस्कार से जोड़ा है, जिसमें पवित्रता और सत्य की ओर बढ़ने की प्रार्थना की गई है।

आधुनिक संदर्भ में शिक्षा:

1. **सुपथा की खोज:**

जीवन में सही मार्ग पर चलने के लिए ज्ञान और विवेक की आवश्यकता होती है। ईश्वर से मार्गदर्शन मांगना और सत्य का अनुसरण करना आवश्यक है।

2. **पाप और दोष से मुक्ति:**

अपनी कमजोरियों और दोषों को पहचानकर उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। आत्मा को पवित्र और निर्मल बनाने के लिए सत्कर्म और ध्यान की आवश्यकता है।

3. **समर्पण और उपासना:**

यह मंत्र हमें सिखाता है कि सच्चे मार्ग पर चलने के लिए ईश्वर पर विश्वास और समर्पण होना चाहिए।

निष्कर्ष:

यह मंत्र प्रार्थना, ज्ञान, और समर्पण का प्रतीक है। यह दर्शाता है कि जीवन में शुभ और सत्य का मार्ग ईश्वर के मार्गदर्शन से ही प्राप्त हो सकता है। पाप और दोषों से मुक्त होकर, सच्ची श्रद्धा के साथ सत्य की खोज ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

ईशोपनिषद का समापन

ईशोपनिषद का समापन आध्यात्मिक समर्पण और आत्मज्ञान की दिशा में होता है। यह उपनिषद जीवन के उद्देश्य, ब्रह्म (ईश्वर), और आत्मा के संबंध को समझाने के बाद, व्यक्ति को एक ऐसी आध्यात्मिक यात्रा की ओर प्रेरित करता है, जो मुक्ति (मोक्ष) और आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाती है।
ईशोपनिषद का अंतिम संदेश यह है कि ईश्वर और आत्मा का अद्वितीय रूप है। ईशोपनिषद में जो ज्ञान दिया गया है, वह संसारिक दुखों से मुक्त होने और आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में व्यक्ति को मार्गदर्शन प्रदान करता है। इसका उद्देश्य यह है कि व्यक्ति सच्चे आत्मज्ञान को प्राप्त करके अपने जीवन के उद्देश्य को पहचाने और संसार के भ्रामक पदार्थों से परे, आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीय रूप में स्थित हो।

ईशोपनिषद के अंतिम मंत्र का सार:
ईशोपनिषद के अंतिम श्लोक में व्यक्ति को इस अद्वितीय और शाश्वत सत्य को जानने का निमंत्रण दिया जाता है। इसमें आध्यात्मिक ज्ञान के महत्व पर जोर दिया जाता है और यह बताया जाता है कि जो व्यक्ति इस अद्वितीय आत्मज्ञान को प्राप्त करता है, वह मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है। इस समापन श्लोक में व्यक्ति को अपनी आत्मा और ब्रह्म के बीच का अंतर मिटाकर एकत्व का अनुभव करने के लिए प्रेरित किया जाता है।
संपूर्ण उपनिषद में जीवन के प्रत्येक पहलू को ब्रह्म के संदर्भ में देखा गया है—सभी कर्म, विचार और साधना ब्रह्म को प्राप्त करने की दिशा में केंद्रित हैं। समापन में यह स्पष्ट किया जाता है कि जो व्यक्ति ईश्वर के साथ मिलकर एकता का अनुभव करता है, वह संसार के बंधनों से मुक्त होकर सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की प्राप्ति करता है।

ईशोपनिषद का समापन वाक्य:

ईशोपनिषद का समापन एक सरल, लेकिन गहरे अर्थ वाले वाक्य के माध्यम से होता है, जो जीवन के अंतिम उद्देश्य को स्पष्ट करता है:

"ईशोऽहं, सर्वेभ्योऽहम्" – अर्थात, "मैं ईश्वर हूँ, मैं सभी प्राणियों का एकत्व हूँ"।

यह वाक्य हमें आत्मा और ब्रह्म के बीच के अद्वितीय संबंध की ओर इंगीत करता है, जो इस उपनिषद के समापन का बोध है। ईशोपनिषद यह समझाता है कि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं, और इस समझ के साथ जीवन का समापन आत्मज्ञान और मुक्ति की प्राप्ति में होता है।

निष्कर्ष:

ईशोपनिषद का समापन यह स्पष्ट करता है कि आध्यात्मिक ज्ञान और आत्मा के अद्वितीय रूप को जानकर हम अपने जीवन में शांति, संतुलन, और संतुष्टि प्राप्त कर सकते हैं। संसारिक बंधनों से परे जाकर, हम सत्य, ब्रह्म और आत्मा के अद्वितीय रूप में एकत्व का अनुभव कर सकते हैं। यह उपनिषद न केवल एक धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि यह जीवन के गहरे उद्देश्य को समझने की प्रेरणा देने वाला मार्गदर्शक है। इसका समापन इस सत्य को स्वीकार करने में होता है कि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं, और इस अद्वितीय सत्य की प्राप्ति से ही मुक्ति संभव है।

॥ केन उपनिषद ॥

सामवेदीय उपनिषद

केन उपनिषद-परिचय

सामवेद में वर्णित वेदांत का संग्रह केन उपनिषद विश्व का प्राचीनतम साहित्य है पश्चिमी खोजकार के अनुसार ईशा से ४५०० वर्ष पूर्व यह लिखा गया जबकि बाल गंगाधर तिलक ने इसकी रचना ईशा से ६००० से ६५०० वर्ष पूर्व बताई है | यह शास्त्र सबसे शुद्ध रूप में प्राप्त है| कुल ४ खण्डों में लिखा गया यह उपनिषद ब्रह्म ज्ञान का अनूठा उदहारण है| केन का शाब्दिक अर्थ होता है “किसका” whom अथार्थ उपनिषद किसके बारे में बता रहा है, वह जानने की वस्तु है | सामवेद के अरण्यक में केन उपनिषद कहा गया है| पाँचों इन्द्रियों के संयमक ज्ञान का वर्णन किया गया है कि उन्हें कौन नियंत्रित करता है| अग्नि, वायु, इंद्र को दृष्ट बना कर यक्ष की सार्वभौम गरिमा ब्रह्म स्वरुप परमात्मा को बताया गया है| प्राण की परिभाषा बताई गयी है, सामवेदीय 'तलवकार ब्राह्मण' के नौवें अध्याय में इस उपनिषद का उल्लेख है। यह एक महत्त्वपूर्ण उपनिषद है। इसमें 'केन' (किसके द्वारा) का विवेचन होने से इसे 'केनोपनिषद' कहा गया है। इसके चार खण्ड हैं।

प्रथम और द्वितीय खण्ड में गुरु-शिष्य की संवाद-परम्परा द्वारा उस (केन) प्रेरक सत्ता की विशेषताओं, उसकी गूढ़ अनुभूतियों आदि पर प्रकाश डाला गया है।

तीसरे और चौथे खण्ड में देवताओं में अभिमान तथा उसके मान-मर्दन के लिए 'यज्ञ-रूप' में ब्राह्मी-चेतना के प्रकट होने का उपाख्यान है। अन्त में उमा देवी द्वारा प्रकट होकर देवों के लिए 'ब्रह्मतत्त्व' का उल्लेख किया गया है तथा ब्रह्म की उपासना का ढंग समझाया गया है। मनुष्य को 'श्रेय' मार्ग की ओर प्रेरित करना, इस उपनिषद का लक्ष्य हैं।

प्रथम खण्ड

वह कौन है?

इस खण्ड में 'ब्रह्म-चेतना' के प्रति शिष्य अपने गुरु के सम्मुख अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है। वह अपने मुख से प्रश्न करता है कि वह कौन है, जो हमें परमात्मा के विविध रहस्यों को जानने के लिए प्रेरित करता है? ज्ञान-विज्ञान तथा हमारी आत्मा का संचालन करने वाला वह कौन है? वह कौन है, जो हमारी वाणी में, कानों में और नेत्रों में निवास करता है और हमें बोलने, सुनने तथा देखने की शक्ति प्रदान करता है?[1]

शिष्य के प्रश्नो का उत्तर देते हुए गुरु बताता है कि जो साधक मन, प्राण, वाणी, नेत्र, कर्ण आदि में चेतना-शक्ति भरने वाले 'ब्रह्म' का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह जीवन्मुक्त होकर अमर हो जाता है तथा आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

वह महान चेतनतत्व (ब्रह्म) वाक् का भी वाक् है, प्राण-शक्ति का भी प्राण है, वह हमारे जीवन का आधार है, वह चक्षु का भी चक्षु है, वह सर्वशक्तिमान है और श्रवण-शक्ति का भी मूल आधार है। हमारा मन उसी की महत्ता से मनन कर पाता है। उसे ही 'ब्रह्म' समझना चाहिए। उसे न ही नेत्रों और कानों से न तो देखा जा सकता है एवं न ही सुना जा सकता है।

दूसरा खण्ड

वह सर्वज्ञ है

इस खण्ड में 'ब्रह्म' की अज्ञेयता और मानव-जीवन के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। गुरु शिष्य को बताता है कि जो असीम और अनन्त है, उसे वह भली प्रकार से जानता है या वह उसे जान गया है, ऐसा नहीं है। उसे पूर्ण रूप से जान पाना असम्भव है। हम उसे जानते हैं या नहीं जानते हैं, ये दोनों ही कथन अपूर्ण हैं।

अहंकारविहीन व्यक्ति का वह बोध, जिसके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त करता है, उसी से वह अमृत-स्वरूप 'परब्रह्म' को अनुभव कर पाता है। जिसने अपने जीवन में ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसे ही परब्रह्म का अनुभव हो पाता है। किसी अन्य योनि में जन्म लेकर वह ऐसा नहीं कर पाता। अन्य समस्त योनियाँ, कर्म-भोग की योनियाँ हैं। मानव-जीवन में ही बुद्धिमान पुरुष प्रत्येक वाणी, प्रत्येक तत्व तथा प्रत्येक जीव में उस परमात्मसत्ता को व्याप्त जानकर इस लोक में जाता है और अमरत्व को प्राप्तकरताहै।

तीसरा खण्ड

वह अहंकार से परे है

तीसरे खण्ड में देवताओं के अहंकार का मर्दन किया गया है। एक बार उस ब्रह्म ने देवताओं को माध्यम बनाकर असुरों पर विजय प्राप्त की। इस विजय से देवताओं को अभिमान हो गया कि असुरों पर विजय प्राप्त करने वाले वे स्वयं हैं। इसमें 'ब्रह्म' ने क्या किया?

तब ब्रह्म ने उन देवताओं के अहंकार को जानकर उनके सम्मुख यक्ष के रूप में अपने को प्रकट किया। तब देवताओं ने जानना चाहा कि वह यक्ष कौन है?

सबसे पहले अग्निदेव ने जाकर यक्ष से उसका परिचय पूछा। यक्ष ने अग्निदेव से उनका परिचय पूछा-'आप कौन हैं?

अग्निदेव ने उत्तर दिया कि वह अग्नि है और लोग उसे जातवेदा कहते हैं। वह चाहे, तो इसपृथ्वी पर जो कुछ भी है, उसे भस्म कर सकता है, जला सकता है।

तब यक्ष ने एक तिनका अग्निदेव के सम्मुख रखकर कहा-'आप इसे जला दीजिये।'

अग्निदेव ने बहुत प्रयत्न किया पर वे उस तिनके को जला नहीं सके। हारकर उन्होंने अन्य देवों के पास लौटकर कहा कि वे उस यक्ष को नहीं जान सके। उसके बाद वायु देव ने जाकर अपना परिचय दिया और अपनी शक्ति का बढ़-चढ़कर बखान किया। इस पर यक्ष ने वायु से कहा कि वे इस तिनके को उड़ा दें, परन्तु अपनी सारी शक्ति लगाने पर भी वायुदेव उस तिनके को उड़ा नहीं सके। तब वायुदेव ने इन्द्र के समक्ष लौटकर कहा कि वे उस यक्ष को समझने में असमर्थ रहे। उन्होंने इन्द्र से पता लगाने के लिए कहा।
इन्द्र ने यक्ष का पता लगाने के लिए तीव्रगति से यक्ष की ओर प्रयाण किया, परन्तु उसके वहाँ पहुँचने से पहले ही यक्ष अंतर्ध्यान हो गया। तब इन्द्र ने भगवती उमा से यक्ष के बारे में प्रश्न किया कि यह यक्ष कौन था?

चौथा खण्ड

वही ब्रह्म है

इन्द्र के प्रश्न को सुनकर उमादेवी ने कहा-'हे देवराज! समस्त देवों में अग्नि, वायु और स्वयं आप श्रेष्ठ माने जाते हैं; क्योंकि ब्रह्म को शक्ति-रूप में इन्हीं तीन देवों ने सर्वप्रथम समझा था और ब्रह्म का साक्षात्कार किया था। यह यक्ष वही ब्रह्म था। ब्रह्म की विजय ही समस्त देवों की विजय है।'
इन्द्र के सम्मुख यक्ष का अन्तर्धान होना, ब्रह्म की उपस्थिति का संकेत- बिजली के चमकने और झपकने- जैसा है। इसे सूक्ष्म दैविक संकेत समझना चाहिए। मन जब 'ब्रह्म' के निकट होने का संकल्प करके ब्रह्म-प्राप्ति का अनुभव करता हुआ-सा प्रतीत हो, तब वह ब्रह्म की उपस्थिति का सूक्ष्म संकेत होता है।
जो व्यक्ति ब्रह्म के 'रस-स्वरूप' का बोध करता है, उसे ही आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो पाती है। तपस्या, मन और इन्द्रियों का नियन्त्रण तथा आसक्ति-रहित श्रेष्ठ कर्म, ये ब्रह्मविद्या-प्राप्ति के आधार हैं। वेदों में इस विद्या का

सविस्तार वर्णन है। इस ब्रह्मविद्या को जानने वाला साधक अपने समस्त पापों को नष्ट हुआ मानकर उस अविनाशी, असीम और परमधाम को प्राप्त कर लेता है।

तब इन्द्र को यक्ष के तात्विक स्वरूप का बोध हुआ और उन्होंने अपने अहंकार का त्याग किया।

अन्त में ब्रह्मवेत्ता जिज्ञासु शिष्यों को बताता है कि इस उपनिषद द्वारा तुम्हें ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग दिखाया गया है। इस पर चलकर तुम ब्रह्म के निकट पहुँच सकते हो।

ॐ श्री परमात्मने नमः

<u>शांति पाठ</u>

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा
मा ब्रह्म निराकारोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

हे नाथों के नाथ !
पूर्ण रूपेण शक्तिमान हों,
मेरे अंग, मेरी वाणी, मेरे प्राण,
मेरे चक्षु, मेरे कर्ण, मेरा बल
एवं सब इन्द्रियों का संबल
मेरे गहन सम्बन्ध हों,
उपनिषदों में स्थित ब्रह्म से
मेरे उस परम ब्रह्म तत्व में लीनता हो,
जो ताप त्रय का निवारण करता है,
आपकी धर्म मय उपस्थिति में तन्मयता हो ||

यह मंत्र शांन्ति पाठ के अंतर्गत आता है इसे आत्मा और इंद्रियों के परिपोषण, सत्य ब्रह्म और उपनिषदों के प्रति श्रद्धा का प्रार्थनात्मक श्लोक माना जाता है। इसका आदि शंकराचार्य द्वारा भाष्य किया गया है, जिसमें उन्होंने इस मंत्र के गूढ़ तत्वों को व्याख्यायित किया है।

मूल पाठ का अर्थ:

1. **"ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।"**

मेरी सभी इंद्रियाँ (वाणी, प्राण, दृष्टि, श्रवण शक्ति, बल, आदि) पुष्ट हों। शारीरिक और मानसिक बल का संवर्धन हो।

2. **"सर्वं ब्रह्मौपनिषदं।"**

यह सब (जो उपनिषद में है) ब्रह्मस्वरूप है। उपनिषद ब्रह्मज्ञान को प्रकट करने वाले हैं।

3. **"माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकारोत्।"**

मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ, और न ब्रह्म मेरे लिए अप्रकट हो। मेरी ब्रह्म के प्रति श्रद्धा अडिग बनी रहे।

4. **"अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु।"**

ब्रह्मज्ञान के प्रति मेरी दृढ़ता बनी रहे और ब्रह्म मेरे लिए कभी अस्पष्ट न हो।

5. **"तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।"**

जो धर्म (गुण, नियम, चेतना) उपनिषद में निहित हैं और ब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं, वे मुझमें विद्यमान हों।

<u>शंकर भाष्य (व्याख्या):</u>

1. **प्रार्थना और आत्म-संवर्धन:**

आदि शंकराचार्य इस मंत्र को आत्मा, शरीर और इंद्रियों के परिपोषण के लिए एक प्रार्थना मानते हैं। वे कहते हैं कि बिना शारीरिक और मानसिक बल के, ब्रह्मज्ञान के लिए उपयुक्त साधना संभव नहीं। इंद्रियों का संयम और उनका विकास आवश्यक है ताकि साधक सत्य ज्ञान को आत्मसात कर सके।

2. **उपनिषद और ब्रह्म की एकता:**
"सर्वं ब्रह्मौपनिषदं" की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि उपनिषद ही ब्रह्म का उद्घाटन करते हैं। उपनिषदों का हर शब्द, हर सूत्र, ब्रह्म को प्रकट करने का साधन है।

3. ब्रह्म के निराकरण का निषेध:
"माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां" का अर्थ है कि साधक के हृदय में ब्रह्म को लेकर कोई संशय न हो। ब्रह्म को नकारने का अर्थ है सत्य ज्ञान से स्वयं को वंचित करना। शंकराचार्य के अनुसार, साधक की श्रद्धा और समर्पण अडिग होना चाहिए।

4. धर्म और आत्म-सिद्धि:
"उपनिषत्सु धर्माः" का अर्थ है वे गुण और नियम जो उपनिषद में बताए गए हैं—जैसे सत्य, तप, संयम, और श्रद्धा। शंकराचार्य कहते हैं कि ये गुण तभी साधक में पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं जब वह अपने आत्मस्वरूप में स्थिर हो और ब्रह्मज्ञान को आत्मसात करे।

शंकराचार्य की दृष्टि:
शंकराचार्य के अनुसार, यह मंत्र ज्ञान, भक्ति और साधना का अद्भुत मेल है। यह साधक को प्रेरित करता है कि वह अपनी इंद्रियों को शुद्ध करके ब्रह्म की खोज में प्रवृत्त हो। उन्होंने इसे आत्मज्ञान प्राप्ति का अनिवार्य साधन बताया है।

व्यावहारिक व्याख्या:
1. यह मंत्र हमें अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखने की प्रेरणा देता है।
2. यह कहता है कि सत्य ज्ञान (ब्रह्म) और उपनिषदों के प्रति श्रद्धा हमारे जीवन को समृद्ध बनाती है।

3. यह हमारी आंतरिक शुद्धता और संयम पर जोर देता है ताकि हम अपने आत्मस्वरूप को पहचान सकें।

प्रथम खंड

मन्त्र १//१

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

हे देव !
आप ही से प्रेरित वाणी हमारी,
आप से ही हैं समस्त कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय इन्द्रियाँ मेरी
अति चपल मन का संपादक नियुक्ति कर्ता भी आप
प्राण के प्रेरक एवं जिज्ञासा के पूरक धर्ता भी आप
वाणी के प्रदाता भी आप
मुझ अज्ञानी की मीमांसा को पूर्ण करें ||

शब्दार्थ:

1. **केन** (केन): किसके द्वारा। 2. **इषितं** (इषितम्): प्रेरित। 3. **पतति** (पतति): चलता है। 4. **प्रेषितं** (प्रेषितम्): भेजा गया। 5. **मनः** (मनः): मन। 6. **प्राणः** (प्राणः): जीवन-शक्ति। 7. **प्रथमः** (प्रथमः): प्रारंभिक या प्रथम। 8. **प्रैति** (प्रैति): गति करता है। 9. **युक्तः** (युक्तः): जुड़ा हुआ। 10. **वाचं** (वाचम्): वाणी। 11. **इमां** (इमाम्): यह। 12. **वदन्ति** (वदन्ति): बोलते हैं। 13. **चक्षुः** (चक्षुः): नेत्र। 14. **श्रोत्रं** (श्रोत्रम्): कान। 15. **क उ** (क उ): कौन देवता।16. **देवः** (देवः): दिव्य शक्ति। 17. **युनक्ति** (युनक्ति): जोड़ता है।

अन्वय (संविधान):

केन इषितं मनः पतति प्रेषितं।
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केन इषितां वाचम् इमां वदन्ति।
चक्षुः श्रोत्रं च कः देवः युनक्ति।

व्याख्या:
यह श्लोक एक दार्शनिक प्रश्न उठाता है:
1. मन, वाणी, चक्षु (आंखें), श्रोत्र (कान) और प्राण जैसी शक्तियां किसके द्वारा प्रेरित होती हैं?
2. वह कौन सी दिव्य शक्ति है, जो इन इंद्रियों को चलाती है और उन्हें जोड़ती है?
3. यह प्रश्न संसार के मूल स्रोत और ब्रह्म की खोज के लिए प्रेरित करता है।

प्रमुख बिंदु:

मन अपने आप नहीं चलता, उसे किसी शक्ति द्वारा प्रेरित किया जाता है।
प्राण (जीवन-शक्ति) भी किसी आधार या शक्ति पर निर्भर है।
वाणी, नेत्र, और कान किसके द्वारा क्रियाशील हैं?
यह श्लोक संकेत करता है कि इन सबका मूल स्रोत ब्रह्म है, जो अनदेखा और अज्ञेय है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

आदि शंकराचार्य अपने भाष्य में इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं:

1. यह प्रश्न ब्रह्म (परम सत्य) को जानने की जिज्ञासा को जन्म देता है।
2. "केन" शब्द ब्रह्म को सूचित करता है, जो स्वयं ज्ञेय (जानने योग्य) नहीं है लेकिन सबकुछ को प्रेरित करता है।
3. मन, प्राण, वाणी, और इंद्रियां स्वायत्त नहीं हैं। यह सब अन्तःप्रेरणा से संचालित होती हैं, और यह प्रेरणा ब्रह्म से आती है।
4. शंकराचार्य बताते हैं कि यह श्लोक ब्रह्म के अव्यक्त (अव्याख्येय) स्वरूप को दर्शाता है, जो इंद्रियों और मन के परे है।

समीक्षा:

1. **दार्शनिक गहराई**:
यह श्लोक अद्वैत वेदांत का आधार है। यह दर्शाता है कि ब्रह्म वह कारण है, जो न केवल सृष्टि को उत्पन्न करता है, बल्कि इसे संचालित भी करता है।

2. **मनुष्य की सीमाएं:**
इंद्रियों और मन की कार्यक्षमता सीमित है। वे अपने स्रोत को नहीं जान सकते।

3. **आध्यात्मिक दिशा:**
यह श्लोक साधक को प्रेरित करता है कि वह अपने भीतर झांके और उस "दिव्य शक्ति" का अनुभव करे, जो सबको जोड़ती है।

सारांश:

यह श्लोक मनुष्य को आत्म-चिंतन और ब्रह्म की खोज के लिए प्रेरित करता है। यह बताता है कि सभी इंद्रियों और मन के पीछे एक अदृश्य शक्ति कार्यरत है, जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है। यह ब्रह्म ही इस सृष्टि की आधारभूत शक्ति है।

मन्त्र=१//२

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः ।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

हे अखिलेश्वर !
आप सर्व ज्ञानी भूतेश्वर हैं,
आप श्रवन इन्द्रियों के धारक श्रवन हैं,
मन के चालक आदि कारण मन हैं,
वाक् के प्राण के संयोजक वाक् एवं प्राण हैं,
नेत्रों के नेत्र एक मात्र आप हैं,
प्रभु मुझे जीवन्मुक्त करें
मैं पुनः जगत में नही आऊँ ||

शब्दार्थ:
1. **श्रोत्रस्य श्रोत्रम्**: कान का कान (सुनने की शक्ति का मूल स्रोत)। 2. **मनसो मनः**: मन का मन (विचार शक्ति का मूल स्रोत)। 3. **वाचः** वाचम्: वाणी की वाणी (बोलने की शक्ति का आधार)। 4. **प्राणस्य प्राणः**: प्राण का प्राण (जीवन शक्ति का मूल)। 5. **चक्षुषः चक्षुः**: आंखों की आंख (दृष्टि का मूल स्रोत)। 6. **अतिमुच्य:** पार करना या मुक्त होना। 7. **धीराः**: ज्ञानी या विवेकी व्यक्ति। 8. **प्रेत्य:** इस लोक को छोड़कर। 9. **अमृता भवन्ति**: अमर हो जाते हैं।

अन्वय (संविधान):
जो कान के पीछे की सुनने की शक्ति है, जो मन के पीछे का प्रेरक है, जो वाणी की शक्ति का मूल है, जो प्राण की ऊर्जा का स्रोत है, और जो आंखों

की दृष्टि का कारण है—उसे जानकर ज्ञानी व्यक्ति इस संसार से मुक्त होकर अमर हो जाते हैं।

व्याख्या:
यह श्लोक ब्रह्म (परम सत्य) की सूक्ष्मता और सबके भीतर उसकी उपस्थिति को समझाने का प्रयास करता है।
1. श्रोत्रस्य श्रोत्रम्: कान केवल भौतिक उपकरण है, परंतु सुनने की वास्तविक शक्ति ब्रह्म है।
2. मनसो मनः: मन के विचारों और भावनाओं को प्रेरित करने वाली शक्ति ब्रह्म है।
3. वाचो वाचम्: वाणी को व्यक्त करने की क्षमता ब्रह्म से ही आती है।
4. प्राणस्य प्राणः: प्राण (जीवन-शक्ति) को संचालित करने वाला ब्रह्म है।
5. चक्षुषश्चक्षुः: आंखों की दृष्टि का मूल स्रोत भी ब्रह्म ही है।
यह श्लोक साधक को आत्मा (ब्रह्म) का साक्षात्कार करने के लिए प्रेरित करता है, जो सभी इंद्रियों और शक्तियों का अंतिम कारण है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
1. शंकराचार्य कहते हैं कि यह श्लोक ब्रह्म को इंद्रियों के अतीत और मन की सीमा से परे बताता है।
2. "श्रोत्रस्य श्रोत्रम्" का अर्थ है, जो स्वयं सुनने का स्रोत है, परंतु न तो उसे सुना जा सकता है और न ही किसी इंद्रिय द्वारा अनुभव किया जा सकता है।
3. ज्ञानी व्यक्ति (धीर) ब्रह्म के इस सूक्ष्म स्वरूप का अनुभव करते हैं और संसार के मोह को त्याग कर अमरत्व प्राप्त करते हैं।
4. यह अमरत्व मृत्यु से परे जाकर मुक्ति की स्थिति को दर्शाता है।

भाष्य:
यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि हमारी सभी इंद्रियां और उनकी शक्तियां किसी बाहरी शक्ति पर नहीं, बल्कि एक आंतरिक अदृश्य शक्ति पर आधारित हैं। यह शक्ति ब्रह्म है।
मनुष्य अक्सर इंद्रियों और उनके कार्यों में उलझा रहता है, परंतु यदि वह इनके स्रोत (ब्रह्म) को जान ले, तो वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है।
ब्रह्म को जानने का अर्थ है संसार की क्षणभंगुरता को पहचानना और आत्मा की अमरता को स्वीकार करना।

समीक्षा:

1. **दार्शनिक गहराई:**
यह श्लोक हमें इंद्रियों और मन की सीमाओं से ऊपर उठकर ब्रह्म (सत्य) की खोज करने की प्रेरणा देता है।
2. **अद्वैत वेदांत का आधार:**
यह श्लोक अद्वैत दर्शन की नींव रखता है, जिसमें आत्मा और ब्रह्म को एक माना गया है।
3. **प्रायोगिक दृष्टिकोण:**
यह श्लोक ध्यान और आत्मनिरीक्षण का महत्व दर्शाता है। इंद्रियों के अनुभव से परे जाकर आत्मा को जानना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है।
4. **संबंधित शिक्षाएं:**
इंद्रियां अस्थायी और भौतिक हैं।
ब्रह्म स्थायी और आध्यात्मिक है।
ब्रह्म का साक्षात्कार आत्मा को अमर बनाता है।

सारांश:

यह श्लोक साधक को ब्रह्म को जानने की प्रेरणा देता है। इंद्रियों और मन के पार जाकर, ब्रह्म का साक्षात्कार करने पर व्यक्ति संसार के बंधनों से मुक्त होकर अमर (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

मन्त्र=१ //३

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः ।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ॥३॥

हे स्वामी !
ब्रह्म की महिमा अपरम्पार,
न तो मन , न प्राण, पहुँच पाते वहां तक,
न तो चेतन , न जड़ यह है सर्वदा भिन्न
ब्रह्म तत्व के ज्ञान की विधि बतलाओ मुझे
उर्वजों का दिया ज्ञान प्राप्त कराओ मुझे
ब्रह्म ही नित्य है , ब्रह्म ही सत्य है ||

शब्दार्थ:

1. **न (न):** नहीं। 2. **तत्र (तत्र):** वहां (ब्रह्म में)। 3. **चक्षुः** (चक्षुः): नेत्र (आंख)। 4. **गच्छति** (गच्छति): पहुंचता है। 5. **वाक्** (वाक्): वाणी। 6.

मनः (मनः): मन। 7. **न विद्मः** (न विद्मः): हम नहीं जानते। 8. **न विजानीमः** (न विजानीमः): हम नहीं समझते। 9. **यथ** (यथा): जैसे। 10. **एतत्** (एतत्): यह (ब्रह्म)। 11. **अनुशिष्यात्** (अनुशिष्यात्): उपदेश किया जाए।

अन्वय (संविधान):

ब्रह्म में न तो आंखें पहुंच सकती हैं, न वाणी, और न ही मन।
हम इसे न तो जानते हैं, न ही समझते हैं कि इसे कैसे उपदेश दिया जाए।

व्याख्या:
यह श्लोक ब्रह्म (परम सत्य) की अतीन्द्रियता को व्यक्त करता है।
1. **इंद्रियों से परे:**
ब्रह्म को आंखें देख नहीं सकतीं।
वाणी उसे व्यक्त नहीं कर सकती।
मन उसे सोच या समझ नहीं सकता।
2. **ज्ञान की सीमा:**
ब्रह्म हमारी बौद्धिक और इंद्रियगत क्षमताओं से परे है।
इसे केवल आत्मानुभव के माध्यम से समझा जा सकता है।
3. अज्ञान की स्वीकृति:
"न विद्मः न विजानीमः" के माध्यम से ऋषि यह स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म को जानने के प्रयास में हमारा ज्ञान सीमित है।
यह विनम्रता आत्मज्ञान प्राप्ति की ओर पहला कदम है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. शंकराचार्य कहते हैं कि यह श्लोक ब्रह्म के अज्ञेय स्वरूप का वर्णन करता है।

2. **इंद्रियों की सीमा:**

ब्रह्म को आंखों से देखा नहीं जा सकता क्योंकि यह भौतिक नहीं है।
वाणी इसे व्यक्त नहीं कर सकती क्योंकि यह अवर्णनीय है।
मन इसे समझ नहीं सकता क्योंकि यह मन के विचारों और सीमाओं से परे है।

3. ज्ञान और अनुभव का भेद:

शंकराचार्य बताते हैं कि ब्रह्म को केवल प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जाना जा सकता है। ब्रह्म के ज्ञान के लिए मन, वाणी, और इंद्रियों का त्याग आवश्यक है।

4. उपदेश का महत्व:

"यथैतदनुशिष्यात्" का अर्थ है कि ब्रह्म का ज्ञान केवल गुरु के मार्गदर्शन से प्राप्त हो सकता है।

भाष्य:

यह श्लोक गहन विनम्रता और अज्ञेयता का प्रतीक है।

1. **आधुनिक संदर्भ में:**

आज जब हम विज्ञान और तर्क के आधार पर सत्य की खोज करते हैं, यह श्लोक हमें यह याद दिलाता है कि सत्य का एक स्तर ऐसा भी है जो तर्क और अनुभव से परे है।

2. **व्यक्तिगत यात्रा:**

ब्रह्म को समझने के लिए व्यक्ति को अपनी इंद्रियों और अहंकार से परे जाना होगा।

आत्मा और ब्रह्म का मिलन केवल ध्यान और साधना के माध्यम से संभव है।

समीक्षा:

1. **दार्शनिक गहराई:**
यह श्लोक अद्वैत वेदांत का आधार है, जो यह मानता है कि ब्रह्म का स्वरूप शब्दों और विचारों से परे है।

2. **आध्यात्मिक प्रेरणा:**
यह श्लोक साधक को इंद्रियों और मन की सीमाओं से मुक्त होकर आत्मा के अनुभव की ओर प्रेरित करता है।

3. **अज्ञान की स्वीकारोक्ति:**
"हम नहीं जानते" कहना साधक के लिए पहला कदम है, क्योंकि यह अहंकार को त्यागने का प्रतीक है।

4. **प्रायोगिक दृष्टिकोण:**
यह श्लोक ध्यान और आत्मनिरीक्षण की महत्ता को रेखांकित करता है।

सारांश:

यह श्लोक ब्रह्म के अज्ञेय और अनुभव-योग्य स्वरूप को व्यक्त करता है।
इंद्रियां, वाणी, और मन ब्रह्म को नहीं समझ सकते।
इसे केवल आत्मानुभव और गुरु के उपदेश के माध्यम से जाना जा सकता है।
यह श्लोक आध्यात्मिक साधना और विनम्रता का मार्ग दिखाता है।

मन्त्र=१//४

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

हे जगदीश!
मुझमे इतनी सामर्थ्य कहाँ,
कर सकूँ ब्रह्म का वर्णन,
मेरी वाणी में इतनी प्रबलता कहाँ
कह सके किंचित का चित्रण,
ब्रह्म तत्व तो है वाणी से,
ब्रह्म तत्व तो है अतिशय अतीत
प्रेरक ज्ञाता प्रवर्तक जो भी है
वाणी से है प्रतीत ||

शब्दार्थ:

1. **यत्** (यत्): वह जो। 2. **वाचा** (वाचा): वाणी से। 3. **अनभ्युदितम्** (अनभ्युदितम्): व्यक्त नहीं किया जा सकता। 4. **येन** (येन): जिसके द्वारा। 5. **वाक्** (वाक्): वाणी। 6. **अभ्युद्यते** (अभ्युद्यते): प्रेरित या प्रकट होती है। 7. **तत्** (तत्): वही। 8. **एव** (एव): ही। 9. **ब्रह्म** (ब्रह्म): परम सत्य। 10. **त्वं** (त्वं): तुम।11. **विद्धि** (विद्धि): जानो। 12. **न** (न): नहीं। 13. **इदं** (इदं):यह। 14. **यत्** (यत्): जो। 15. **उपासते** (उपासते): पूजा करते हैं।

अन्वय (संविधान):

वह जो वाणी से व्यक्त नहीं हो सकता, लेकिन जिसके द्वारा वाणी संभव होती है—वही ब्रह्म है। इसे जानो। वह नहीं है जिसे लोग पूजा करते हैं।

व्याख्या:
यह श्लोक ब्रह्म (परम सत्य) की सूक्ष्मता और उसकी सर्वव्यापकता को समझाता है।
1. **ब्रह्म वाणी से परे है:**
वाणी ब्रह्म का वर्णन नहीं कर सकती।
यह शब्दों और धारणाओं से परे है।
2. **ब्रह्म वाणी का मूल है:**
वाणी को जो शक्ति और प्रेरणा प्रदान करता है, वह ब्रह्म है।
यह सभी इंद्रियों और कार्यों का आधार है।
3. **भ्रम का निवारण:**
"नेदं यदिदमुपासते" के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि लोग जिस बाहरी वस्तु या रूप की पूजा करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।
ब्रह्म किसी मूर्ति, शब्द, या विचार तक सीमित नहीं है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
1. **ब्रह्म की अतीन्द्रियता:**
शंकराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म का स्वरूप वाणी, मन, और इंद्रियों की सीमा से बाहर है।
इसे केवल प्रत्यक्ष अनुभव (साक्षात्कार) के माध्यम से जाना जा सकता है।
2. **"यद्वाचा अनभ्युदितं":**
ब्रह्म वह है जिसे वाणी प्रकट नहीं कर सकती।

सभी ध्वनियों और शब्दों का स्रोत वही है।

3. **"नेदं यदिदमुपासते":**

सामान्य पूजा या उपासना (जो बाह्य रूपों तक सीमित है) ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं करा सकती।

केवल ध्यान, ज्ञान और आत्मसाक्षात्कार के द्वारा ही इसे जाना जा सकता है।

भाष्य:

यह श्लोक हमें चेतना की उस गहराई तक जाने की प्रेरणा देता है, जो बाहरी पूजा या प्रतीकों से परे है।

1. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

ब्रह्म को जानने के लिए बाहरी औपचारिकताओं से परे जाकर अपने भीतर देखना आवश्यक है।

यह आत्मा और ब्रह्म के मिलन का प्रतीक है।

2. **वाणी और विचार की सीमा:**

शब्द और विचार ब्रह्म की व्याख्या करने में असमर्थ हैं।

इसे केवल अनुभव किया जा सकता है।

3. **व्यक्तिगत महत्व:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि सच्चा ज्ञान बाहरी पूजा से नहीं, बल्कि आत्मचिंतन और ध्यान से प्राप्त होता है।

समीक्षा:

1. **दार्शनिक गहराई:**

श्लोक अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को व्यक्त करता है कि ब्रह्म निराकार और अज्ञेय है।

2. **भ्रम का निवारण:**
यह उन साधकों को मार्गदर्शन देता है जो बाह्य रूपों में ब्रह्म की खोज करते हैं।
3. **आध्यात्मिक प्रेरणा:**
यह श्लोक ध्यान और आत्मनिरीक्षण का महत्व रेखांकित करता है।
4. **वाणी और इंद्रियों की सीमा:**
यह हमें अपनी इंद्रियों और मानसिक सीमाओं को पहचानने और उनके पार जाने की प्रेरणा देता है।

सारांश:
यह श्लोक ब्रह्म की अतीन्द्रियता और उसकी सर्वव्यापकता को उजागर करता है।
ब्रह्म वह है जिसे वाणी व्यक्त नहीं कर सकती, परंतु वाणी उसी से प्रेरित होती है।
इसे केवल ध्यान और आत्मज्ञान से ही समझा जा सकता है।
बाहरी पूजा या प्रतीकात्मक उपासना ब्रह्म का साक्षात्कार कराने में सक्षम नहीं है।

मन्त्र=१//५

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

हे नाथ !
पर ब्रह्म स्वरुप आप

मन, बुद्धि, से परे हैं,
इतनी मनोशक्ति कहाँ की
भाषित कर सके ब्रह्म को
ब्रह्म शक्ति से ही मन
समर्थ है अहम के मनन को,
मेरी बुद्धि एवं मन में इतनी सामर्थ्य दो
परब्रह्म की मीमांसा कर सकूँ ||

शब्दार्थ:

1. **यत्** (यत्): वह जो। 2. **मनसा** (मनसा): मन से। 3**. न मनुते** (न मनुते): समझा या विचार किया नहीं जा सकता। 4. **येन (येन**): जिसके द्वारा। 5. **आहुः** (आहुः): कहा गया है। 6. **मनः** (मनः): मन। 7. **मतम्** (मतम्): सोचा या समझा जाता है। 8. **तत्** (तत्): वही। 9. **एव** (एव): ही। 10. **ब्रह्म** (ब्रह्म): परम सत्य। 11. **त्वं** (त्वं): तुम। 12. **विद्धि** (विद्धि): जानो। 13. **न** (न): नहीं। 14. **इदं** (इदं): यह। 15. **यत्** (यत्): जो। 16. **उपासते** (उपासते): पूजा करते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म (परम सत्य) की अतीन्द्रियता और मन के सीमित ज्ञान को स्पष्ट करता है।

1. **ब्रह्म की अतीन्द्रियता:**

ब्रह्म को मन से सोचा या समझा नहीं जा सकता।
ब्रह्म मन की परे है और इसकी सीमाओं से मुक्त है।

2. **मन का आधार ब्रह्म है:**

मन जिस शक्ति के कारण विचार करता है, वही ब्रह्म है।

इस श्लोक में यह बताया गया है कि मन केवल एक उपकरण है, और इसकी शक्ति का स्रोत ब्रह्म है।

3. **बाह्य उपासना का खंडन:**

"नेदं यदिदमुपासते" से यह स्पष्ट होता है कि बाह्य पूजा या प्रतीकात्मक उपासना ब्रह्म का वास्तविक साक्षात्कार नहीं करा सकती।

ब्रह्म न तो मूर्तियों में सीमित है और न ही शब्दों में।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. ब्रह्म की पहचान:

शंकराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म को मन से न तो सोचा जा सकता है और न ही समझा जा सकता है, क्योंकि मन स्वयं सीमित है।

ब्रह्म ही वह शक्ति है जिसके कारण मन काम करता है।

2. **इंद्रियों और मन का अज्ञान:**

मन और इंद्रियां केवल भौतिक जगत को समझने में सक्षम हैं।

ब्रह्म न तो किसी भौतिक वस्तु के समान है और न ही किसी विचार के माध्यम से जाना जा सकता है।

3. **बाहरी उपासना की असमर्थता:**

शंकराचार्य बताते हैं कि बाहरी पूजा केवल एक प्रतीकात्मक अभ्यास है।

ब्रह्म का अनुभव ध्यान और आत्मज्ञान के द्वारा ही संभव है।

भाष्य:

यह श्लोक गहन आध्यात्मिक सत्य को प्रकट करता है।

1. **आधुनिक संदर्भ:**

आज के युग में जब विचारों और तर्कों का महत्व अधिक है, यह श्लोक यह बताता है कि सत्य केवल तर्क से नहीं जाना जा सकता।

यह एक गहन आत्मिक अनुभव है, जो मन और विचारों से परे है।

2. **आत्मज्ञान का मार्ग:**

ब्रह्म को जानने के लिए मन की सीमाओं को पार करना आवश्यक है।
ध्यान और आत्मनिरीक्षण इसके लिए प्रमुख साधन हैं।

3. **व्यक्तिगत महत्व:**

यह श्लोक सिखाता है कि मन को नियंत्रित कर, उसकी सीमाओं से ऊपर उठकर, आत्मा का साक्षात्कार करना ही जीवन का लक्ष्य है।

समीक्षा:

1. **दार्शनिक गहराई:**

यह श्लोक अद्वैत वेदांत का सार है, जो ब्रह्म को अज्ञेय और असीम मानता है।
ब्रह्म को केवल आत्मज्ञान और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जाना जा सकता है।

2. **भ्रम का निवारण:**

बाह्य पूजा और प्रतीकों में ब्रह्म की खोज करना व्यर्थ है।
यह श्लोक हमें आंतरिक यात्रा की ओर प्रेरित करता है।

3. **आध्यात्मिक प्रेरणा:**

यह साधकों को बाहरी जगत से हटकर आत्मा की ओर मुड़ने का मार्गदर्शन देता है।
मन और विचारों से परे जाने की आवश्यकता पर बल देता है।

4. **वैयक्तिकता:**

यह श्लोक सिखाता है कि हर व्यक्ति अपने भीतर ब्रह्म को अनुभव कर सकता है, यदि वह ध्यान और साधना में संलग्न हो।

सारांश:

यह श्लोक ब्रह्म की अतीन्द्रियता और उसकी सर्वव्यापकता को समझाने का प्रयास करता है।
ब्रह्म को मन से समझा नहीं जा सकता, क्योंकि मन उसकी सीमा में नहीं है।
ब्रह्म वही शक्ति है जो मन को सोचने की क्षमता देती है।
बाह्य पूजा और प्रतीकात्मक उपासना ब्रह्म की वास्तविक अनुभूति नहीं कराती।
इसे केवल ध्यान, आत्मनिरीक्षण, और आत्मज्ञान के माध्यम से जाना जा सकता है।

मन्त्र=१//६

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

हे स्वामी !
आपने जगत तो दृष्टिमान बनाया,
सारे दृश्य दृष्टव्य बनाये
दृष्टि और नेत्र एक दूसरे के हैं पूरक नही गंतव्य
इन इन्द्रियों से परे अति भव्य
पर ब्रह्म प्रभु आप
इस शक्ति अंश से
दृष्टिगोचर है जग
प्रभु आपका ध्यान रहे
प्रभु आपकी शक्ति हो कर्तव्य ||

शब्दार्थ:

1. **यत्** (यत्): वह जो। 2. **चक्षुषा** (चक्षुषा): आंखों से। 3. **न पश्यति** (न पश्यति): नहीं देखा जा सकता। 4. **येन** (येन): जिसके द्वारा। 5. **चक्षूँषि** (चक्षूँषि): आंखें। 6. **पश्यति** (पश्यति): देखती हैं। 7. **तत्** (तत्): वही। 8. **एव** (एव): ही। 9. **ब्रह्म** (ब्रह्म): परम सत्य। 10. **त्वं** (त्वं): तुम। 11. **विद्धि** (विद्धि): जानो। 12. **न** (न): नहीं। 13. **इदं** (इदं): यह। 14. **यत्** (यत्): जो। 15. **उपासते** (उपासते): पूजा करते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म (परम सत्य) की अपरिभाषितता और उसकी शक्ति को समझाता है।

1. **ब्रह्म आंखों से परे है:**

ब्रह्म को किसी दृश्य वस्तु के रूप में आंखों से नहीं देखा जा सकता।
यह भौतिक रूप और इंद्रिय-गम्य नहीं है।

2. **आंखों का कारण ब्रह्म है:**

वही ब्रह्म है जो आंखों को देखने की शक्ति प्रदान करता है।
यह सभी इंद्रियों और उनके कार्यों का मूल है।

3. **भौतिक पूजा का निषेध:**

"नेदं यदिदमुपासते" कहता है कि बाहरी प्रतीकों और मूर्तियों की पूजा ब्रह्म का साक्षात्कार कराने में असमर्थ है।
ब्रह्म असीम, निराकार और अनिर्वचनीय है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **ब्रह्म अतीन्द्रिय:**

शंकराचार्य बताते हैं कि ब्रह्म किसी इंद्रिय द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है।

आंखें, जो बाहरी रूपों को देखती हैं, ब्रह्म को देख नहीं सकतीं।

2. **आंखों की शक्ति का स्रोत:**

ब्रह्म वह शक्ति है जिसके कारण आंखें देख सकती हैं।

इंद्रियां और उनके कार्य ब्रह्म पर आधारित हैं।

3**. बाह्य उपासना की असमर्थता:**

जो लोग ब्रह्म को किसी विशेष रूप में पूजते हैं, वे इसके असीम स्वरूप को नहीं पहचान पाते।

सच्चा ज्ञान ब्रह्म के अतीन्द्रिय और सर्वव्यापक स्वरूप को जानने में है।

भाष्य:

1. **आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि:**

यह श्लोक इंद्रियों की सीमाओं को उजागर करता है।

ब्रह्म को जानने के लिए बाहरी दृष्टि से परे आत्म-दृष्टि की आवश्यकता है।

2. **भौतिकता से ऊपर:**

ब्रह्म को देखना या समझना भौतिक साधनों से संभव नहीं है।

यह आत्मा का अनुभव है, जो ध्यान और साधना से प्राप्त होता है।

3. **प्रेरणा:**

श्लोक सिखाता है कि हमें ब्रह्म को बाह्य वस्तुओं में नहीं, बल्कि अपने भीतर खोजना चाहिए।

आत्मा ही वह दर्पण है जिसमें ब्रह्म का प्रतिबिंब दिखाई देता है।

समीक्षा:

1. दर्शन का सार:

यह श्लोक अद्वैत वेदांत का मूलभूत सिद्धांत प्रकट करता है।

ब्रह्म इंद्रियों से परे और असीम है।

2. **आध्यात्मिक गहराई:**
ब्रह्म के अनुभव के लिए साधक को भौतिक प्रतीकों और सीमाओं से ऊपर उठना होगा।
यह ध्यान, आत्मानुभूति, और गुरु के मार्गदर्शन की महत्ता को रेखांकित करता है।
3. **उपासना और सच्चाई:**
बाहरी पूजा प्रतीकात्मक है, परंतु ब्रह्म को जानने के लिए आंतरिक साधना आवश्यक है।
यह हमें भौतिकता से आत्मा की ओर प्रेरित करता है।

सारांश:
1. **ब्रह्म अतीन्द्रिय है:**
ब्रह्म को आंखों से नहीं देखा जा सकता, परंतु वही आंखों को देखने की शक्ति देता है।
2. **बाहरी पूजा का निषेध:**
ब्रह्म किसी बाहरी मूर्ति या प्रतीक में सीमित नहीं है।
3. **आत्मज्ञान का महत्व:**
ब्रह्म को जानने के लिए आत्मा की गहराई में जाना होगा।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
यह श्लोक यह समझाने में सहायक है कि भौतिक साधनों और विचारों के माध्यम से परम सत्य का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता।
ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ध्यान, साधना, और आत्मनिरीक्षण का अभ्यास करना अनिवार्य है।

मन्त्र=१//७

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

हे नाथ !
इन कर्ण इन्द्रियों में इतनी सामर्थ्य कहाँ
जो पर ब्रह्म का गुणगान सुन सके
यह तो मात्र जगत की प्रस्तुति की श्रोता हैं
पर ब्रह्म तो अतिशय परे हैं
मुझे इतनी क्षमता प्रदान करें प्रभु
की मेरे कर्ण परब्रह्म की
प्रसंशा को सुन सकें ||

शब्दार्थ:

1. **यत्** (यत्): वह जो। 2. **श्रोत्रेण** (श्रोत्रेण): कानों से। 3. **न शृणोति** (न शृणोति): नहीं सुन सकता। 4. **येन (येन):** जिसके द्वारा। 5. **श्रोत्रम** (श्रोत्रम्): श्रवण (कान की शक्ति)। 6. **इदं** (इदं): यह। 7. **श्रुतम्** (श्रुतम्): सुना हुआ। 8. **तत्** (तत्): वही। 9. **एव** (एव): ही। 10. **ब्रह्म** (ब्रह्म): परम सत्य।11. **त्वं** (त्वं): तुम। 12. **विद्धि** (विद्धि): जानो। 13. **न** (न): नहीं। 14. **इदं** (इदं): यह। 15. **यत्** (यत्): जो। 16. **उपासते** (उपासते): पूजा करते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म (परम सत्य) की अतीन्द्रियता और उसकी सूक्ष्मता को दर्शाता है।

1. **ब्रह्म सुनने योग्य नहीं है:**
ब्रह्म को किसी भी इंद्रिय, विशेषकर श्रवण द्वारा नहीं सुना जा सकता।
यह शब्दों और ध्वनियों से परे है।
2. **श्रवण की शक्ति का स्रोत ब्रह्म है:**
वह ब्रह्म ही है जो कानों को सुनने की शक्ति प्रदान करता है।
यह इंद्रियों और उनके कार्यों का मूल कारण है।
3. **बाह्य पूजा का असार:**
"नेदं यदिदमुपासते" से यह स्पष्ट होता है कि जो लोग ब्रह्म को बाह्य रूपों या प्रतीकों में ढूंढ़ते हैं, वे उसका वास्तविक रूप नहीं देख पाते।
ब्रह्म का साक्षात्कार केवल आंतरिक साधना, ध्यान और आत्मज्ञान से किया जा सकता है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
1. **ब्रह्म और इंद्रियों की सीमा:**
शंकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म को इंद्रियों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वह परे है।
मन, इंद्रियाँ और बुद्धि केवल भौतिक जगत की वस्तुओं को ही समझ सकती हैं।
2. **श्रवण और ब्रह्म का संबंध:**
कानों को सुनने की शक्ति देने वाला वही ब्रह्म है।
इस श्लोक के माध्यम से यह बताया जाता है कि ब्रह्म स्वयं परम तत्व है, जो इंद्रियों और उनकी कार्यक्षमता का स्रोत है।
3. **बाहरी पूजा का निषेध:**
शंकराचार्य यह बताते हैं कि बाहरी पूजा और प्रतीकात्मक उपासना ब्रह्म के वास्तविक रूप का दर्शन नहीं करा सकती।

ब्रह्म को केवल आत्मज्ञान, साधना और ध्यान के माध्यम से ही अनुभव किया जा सकता है।

भाष्य:

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म इंद्रिय-गम्य नहीं है।

1. आध्यात्मिक दृष्टिकोण:

ब्रह्म का साक्षात्कार केवल आंतरिक साधना और ध्यान से संभव है, न कि बाहरी उपासना से।

यह श्लोक हमें यह समझाने में मदद करता है कि जो ब्रह्म है, वह इंद्रिय-गम्य नहीं है।

2. **इंद्रिय और ब्रह्म का संबंध:**

यह श्लोक हमें यह बताता है कि हमारी इंद्रियाँ, जैसे श्रवण, दृष्टि, आदि, ब्रह्म से प्रेरित हैं।

हम इन इंद्रियों के माध्यम से ब्रह्म को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते, लेकिन ब्रह्म ही इन इंद्रियों का आधार है।

3. **भ्रम का निवारण:**

बाहरी रूपों, मूर्तियों और प्रतीकों में ब्रह्म की खोज करना निरर्थक है।

सच्चा ज्ञान आत्मा के भीतर है, जो ध्यान और साधना के माध्यम से प्राप्त होता है।

समीक्षा:

1. **दार्शनिक गहराई:**

यह श्लोक अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को स्पष्ट करता है कि ब्रह्म केवल एक अदृश्य और अज्ञेय तत्व है।

इंद्रियाँ केवल भौतिक जगत को अनुभव करती हैं, ब्रह्म को नहीं।

2. **भ्रम का निवारण:**
श्लोक हमें यह सिखाता है कि बाह्य पूजा और प्रतीकात्मक उपासना ब्रह्म के अनुभव में सहायक नहीं हो सकती।
ब्रह्म का अनुभव केवल आंतरिक साधना से संभव है।
3. **आध्यात्मिक प्रेरणा:**
यह श्लोक साधक को आत्मसाक्षात्कार की ओर प्रेरित करता है, ताकि वे बाहरी रूपों के बजाय आंतरिक सत्य को पहचान सकें।

सारांश:
यह श्लोक ब्रह्म के अतीन्द्रिय और निराकार रूप को स्पष्ट करता है।
ब्रह्म को इंद्रियाँ नहीं जान सकतीं, और इंद्रियों की शक्तियों का स्रोत वही ब्रह्म है।
बाहरी पूजा और प्रतीकों में ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता।
सच्चा ज्ञान आत्मा और ध्यान के माध्यम से प्राप्त होता है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
यह श्लोक यह समझाने में सहायक है कि भौतिक साधनों और इंद्रियों के माध्यम से परम सत्य का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता।
ब्रह्म का अनुभव प्राप्त करने के लिए आंतरिक साधना और ध्यान की आवश्यकता है।

मन्त्र=१//८

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥

हे नाथ !
प्रेरक प्रवर्तक है यह शक्तिशाली मन
प्रभु आप हो नित्य,
प्राण हमारे प्राकृतिक शक्ति सीमा से परे हैं,
यह मर्म ही है औचित्य,
प्रभु अंश बसा है इन प्राण में
प्रवृत जीव का है कर्म,
कृपा करो, रहे यही धर्म ||

शब्दार्थ:

1. **यत्** (यत्): वह जो। 2. **प्राणेन** (प्राणेन): प्राण (जीवित शक्ति) से। 3. **न प्राणिति** (न प्राणिति): जीवित नहीं होता। 4. **येन** (येन): जिसके द्वारा। 5. **प्राणः** (प्राणः): प्राण (जीवित शक्ति)। 6. **प्रणीयते** (प्रणीयते): जो उत्पन्न होता है या संचालित होता है। 7. **तत्** (तत्): वही। 8. **एव** (एव): ही। 9. **ब्रह्म** (ब्रह्म): परम सत्य। 10. **त्वं** (त्वं): तुम। 11. **विद्धि** (विद्धि): जानो। 12. **न** (न): नहीं। 13. **इदं** (इदं): यह। 14. **यत्** (यत्): जो। 15. **उपासते** (उपासते): पूजा करते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म (परम सत्य) को प्राण (जीवित शक्ति) और उसके द्वारा जीवन में आने वाली ऊर्जा से जोड़ता है।

1. **ब्रह्म और प्राण का संबंध:**

ब्रह्म वह शक्ति है जिसके द्वारा जीवन का संचार होता है।

प्राण (जीवित शक्ति) ब्रह्म से उत्पन्न और संचालित होते हैं, यह जीवन के अस्तित्व का आधार है।

2. **प्राण का स्रोत ब्रह्म है:**

प्राणों की क्रियाशीलता और जीवन की शक्ति ब्रह्म से ही आती है।

यदि ब्रह्म न हो, तो प्राण कुछ भी नहीं कर सकते, और जीवन का अस्तित्व नहीं रह सकता।

3. **बाह्य पूजा का निषेध:**

"नेदं यदिदमुपासते" का मतलब है कि बाहरी रूपों की पूजा करके ब्रह्म को नहीं जाना जा सकता।

ब्रह्म का साक्षात्कार आंतरिक अनुभव और साधना से होता है, न कि बाह्य पूजा से।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **ब्रह्म और प्राण का संबंध:**

शंकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म ही प्राण का स्रोत है, और प्राण केवल ब्रह्म के कारण ही कार्य कर सकते हैं।

प्राणों की गति, शक्ति, और जीवन का संचार ब्रह्म से ही होता है।

2. **ब्रह्म का निराकार रूप:**

शंकराचार्य यह बताते हैं कि ब्रह्म निराकार और अतीन्द्रिय है, और यह न तो किसी विशेष रूप में पूजा जा सकता है और न ही इसे किसी इंद्रिय से अनुभव किया जा सकता।

ब्रह्म को जानने के लिए आत्मानुभूति और साधना आवश्यक है।

भाष्य:

यह श्लोक ब्रह्म की शक्ति और उसकी सर्वव्यापकता को प्रकट करता है।

1. **आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि:**
ब्रह्म, जो जीवन के प्रत्येक अंश में व्याप्त है, वह प्राणों के माध्यम से अपना अस्तित्व प्रकट करता है।
प्राणों का संचार, विचार और हर एक जीवित क्रिया ब्रह्म की उपस्थिति को दर्शाती है।
2. **ब्रह्म का अनदेखा रूप:**
बाहरी पूजा या किसी विशेष रूप में ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह सर्वव्यापक और निराकार है।
सच्चा अनुभव ब्रह्म का ध्यान, साधना, और आत्मज्ञान के माध्यम से ही संभव है।

समीक्षा:
1. **दर्शन का गहरा अर्थ:**
यह श्लोक अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को और भी स्पष्ट करता है, जिसमें ब्रह्म को सच्चा जीवन शक्ति माना गया है।
ब्रह्म ही जीवन और प्राण का स्रोत है, और बिना ब्रह्म के प्राण शून्य हैं।
2. **भौतिकता और आत्मा का भेद:**
श्लोक बताता है कि जीवन की ऊर्जा, क्रियाशीलता और चेतना का स्रोत ब्रह्म है।
बाहरी रूपों या पूजा से ब्रह्म का अनुभव नहीं हो सकता, यह केवल आत्मा के भीतर अनुभव किया जा सकता है।
3. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**
इस श्लोक के माध्यम से, हमें यह समझने की आवश्यकता है कि ब्रह्म न केवल हमारे अस्तित्व का आधार है, बल्कि वह हर जीवन की शक्ति का भी स्रोत है।

सारांश:
ब्रह्म ही प्राणों का स्रोत है, और प्राणों के बिना जीवन नहीं हो सकता।
ब्रह्म को बाह्य पूजा के माध्यम से नहीं जाना जा सकता।
ब्रह्म का वास्तविक अनुभव ध्यान और साधना के माध्यम से होता है, जो आंतरिक रूप से संभव है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
यह श्लोक यह समझाने में मदद करता है कि जीवन की शक्ति, ऊर्जा और चेतना का स्रोत ब्रह्म है।
जीवन की गहरी समझ और आत्मज्ञान के लिए बाह्य रूपों की बजाय आंतरिक साधना और ध्यान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

द्वितीय खंड

मन्त्र=२//१

यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमाँस्येमेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥

हे प्रभु !
न तो मैं यह मानता कि मैं अति विज्ञ
मैं यह मानता की मैं ब्रह्म से हूँ अनभिज्ञ
मति मेरी भ्रमित
मन मेरा प्राण मेरा
रह ब्रह्माण्ड में
है ब्रह्मांश न कि पूर्ण ब्रह्म
यह जो ब्रह्मांश है वह तो अंश का भी अंश है,
अतः मुझे कुछ तो विज्ञ कर ||

शब्दार्थ:

1. **यदि** (यदि): यदि। 2. **मन्यसे** (मन्यसे): तुम मानते हो। 3. **सुवेदेति** (सुवेदेति): वह जानने योग्य है। 4. **दहरे** (दहरे): हृदय के। 5. **एव** (एव): ही। 6. **अपि** (अपि): भी। 7. **नूनं** (नूनं): निश्चय ही। 8. **त्वं** (त्वं): तुम। 9. **वेत्थ** (वेत्थ): जानते हो। 10. **ब्रह्मणो** (ब्रह्मणो): ब्रह्म का। 11. **रूपम्** (रूपम्): रूप। 12. **यत्** (यत्): जो। 13. **अस्य** (अस्य): इसका। 14. **त्वं** (त्वं): तुम। 15. **देवेष्वथ** (देवेष्वथ): देवों में भी। 16. **नु** (नु): क्या। 17. **मीमाँस्येमेव** (मीमाँस्येमेव): क्या तुम उसका विश्लेषण करोगे। 18. **ते** (ते): तुम। 19.**मन्ये**

(मन्ये): मैं मानता हूँ। 20. **विदितम्** (विदितम्): ज्ञात।

व्याख्या:
यह श्लोक ब्रह्म के अद्वितीय स्वरूप और उसकी व्यापकता को दर्शाता है।
1. ब्रह्म का ज्ञान:
यदि कोई व्यक्ति ब्रह्म के रूप को समझता है, तो उसे यह ज्ञात होता है कि वह केवल हृदय में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है।
यह श्लोक इस बात को भी स्पष्ट करता है कि ब्रह्म के रूप का वास्तविक ज्ञान देवों और अन्य अस्तित्वों से परे है, और केवल व्यक्ति के आत्मज्ञान और साधना से प्राप्त किया जा सकता है।
2. **ब्रह्म का स्वरूप:**
ब्रह्म का रूप केवल हृदय के भीतर स्थित नहीं होता, वह सम्पूर्ण सृष्टि में, देवों में और हर अस्तित्व में व्याप्त होता है।
श्लोक यह संकेत करता है कि ब्रह्म के रूप का ज्ञान सिर्फ सतर्कता और ध्यान से प्राप्त किया जा सकता है, और इसका अनुभव बाहरी रूपों से नहीं होता।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
1. **ब्रह्म का रूप:**
शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक यह बताता है कि ब्रह्म का वास्तविक रूप वह है जिसे हमें अपने हृदय में पहचानना चाहिए।
ब्रह्म का रूप केवल आंतरिक आत्मा में, न कि बाहरी रूपों में होता है।
2. **विपरीत परिप्रेक्ष्य:**
जो व्यक्ति बाह्य देवताओं और प्रतीकों की पूजा करता है, वह ब्रह्म का असल रूप नहीं समझ सकता।

ब्रह्म की असली पहचान और अनुभव आत्मा में ही होता है, और वही आत्मज्ञान है।

भाष्य:
यह श्लोक ब्रह्म के वास्तविक रूप और उसके सूक्ष्मता को समझाने का एक महत्वपूर्ण साधन है।
1. **आध्यात्मिक गहराई:**
ब्रह्म का वास्तविक रूप केवल हृदय और आत्मा के भीतर पाया जा सकता है।
बाहरी रूपों और देवताओं की पूजा से ब्रह्म का सही ज्ञान नहीं होता, बल्कि ब्रह्म के तत्व का अनुभव केवल आंतरिक साधना और ध्यान से संभव है।
2. **आत्मा का साक्षात्कार:**
यह श्लोक हमें यह भी सिखाता है कि बाहरी पूजा और रस्मों में उलझने की बजाय, हमें ब्रह्म के वास्तविक रूप का ज्ञान आत्मा के माध्यम से प्राप्त करना चाहिए।
ब्रह्म का रूप आत्मा के भीतर स्थित है और जब हम उस आत्मा को जान लेते हैं, तब हम ब्रह्म को पहचान सकते हैं।

समीक्षा:
1. दार्शनिक दृष्टिकोण:
यह श्लोक अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को दर्शाता है कि ब्रह्म निराकार और सर्वव्यापी है।
ब्रह्म को समझने के लिए बाहरी रूपों और भौतिक पूजा से आगे बढ़कर आत्मा और ध्यान की आवश्यकता होती है।

2. **ध्यान और साधना की आवश्यकता:**
श्लोक यह स्पष्ट करता है कि ब्रह्म का वास्तविक रूप समझने के लिए हमें अपनी साधना और ध्यान को आंतरिक रूप से विकसित करना होगा। बाह्य रूपों की पूजा केवल भटकाव है, जबकि सच्चा ज्ञान आत्मा के भीतर है।

सारांश:
यह श्लोक ब्रह्म के अद्वितीय रूप और उसकी व्यापकता को दर्शाता है। ब्रह्म केवल हृदय के भीतर ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। बाह्य पूजा और प्रतीकों से ब्रह्म का वास्तविक रूप नहीं समझा जा सकता, केवल आंतरिक साधना और आत्मज्ञान से ही उसे पहचाना जा सकता है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि बाहरी रूपों और धार्मिक कर्मकांडों से ब्रह्म का सही ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता।
हमें आत्मा के भीतर ध्यान और साधना के माध्यम से ब्रह्म के वास्तविक रूप को पहचानने का प्रयास करना चाहिए।

मन्त्र-२//२

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥२॥

हे जगत्पिता !

वेदग्य नही मैं
ब्रह्म है किंचित,
ज्ञेय अज्ञेय से अनभिज्ञ नितांत
वेदज्ञ, ज्ञान मेरी क्षमता से परे
कृपा करो इतनी
ज्ञातव्य, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय
की हो पहचान मुझे ||

शब्दार्थ:

1**. नाहं (**नाहं): मैं नहीं। 2. **मन्ये** (मन्ये): मानता हूँ। 3. **सुवेदेति** (सुवेदेति): जो सही तरीके से जानता है। 4. **नो** (नो): और नहीं। 5. **वेदेति** (वेदेति): जानता है। 6. **वेद** (वेद): वेद, ज्ञान। 7. **च** (च): और। 8. **यो** (यो): जो। 9. **नस्तद्वेद** (नस्तद्वेद): वह जानता है। 10. **तद्वेद** (तद्वेद): वह जानता है वह। 11. **नो** (नो): नहीं। 12**. न वेद** (न वेद): वह नहीं जानता।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म ज्ञान और सत्य के ज्ञान के बारे में चर्चा करता है।

1. ज्ञान का सही अनुभव:

श्लोक में यह कहा गया है कि केवल वह व्यक्ति जो ब्रह्म के वास्तविक रूप को समझता है, वही सच्चा ज्ञानी होता है।

अन्य लोग जो ब्रह्म के बारे में सही ज्ञान नहीं रखते, वे केवल वेदों के शाब्दिक ज्ञान से ही संतुष्ट रहते हैं, लेकिन उनका सच्चा ज्ञान नहीं होता।

2. वेदों का महत्व:

श्लोक यह इंगीत करता है कि वेद केवल बाहरी शास्त्र हैं, लेकिन सच्चा ज्ञान

तब मिलता है जब हम उन्हें आत्मसात करते हैं और उनका वास्तविक अर्थ समझते हैं।
केवल शाब्दिक अध्ययन से ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

3. **आध्यात्मिक साधना का महत्व:**

सच्चे ज्ञान का अनुभव आत्मा के भीतर ही संभव है, और यह साधना और ध्यान के माध्यम से होता है।

शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):

1. **वेदों का सही ज्ञान:**

शंकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म का ज्ञान केवल शाब्दिक ज्ञान से प्राप्त नहीं होता, बल्कि इसे आत्मा के अनुभव से ही जाना जा सकता है।
शाब्दिक ज्ञान से अधिक, साधना और आत्मज्ञान महत्वपूर्ण है।

2. **आध्यात्मिक ज्ञान:**

शंकराचार्य यह बताते हैं कि वेदों के शाब्दिक ज्ञान से, बिना उनके गहरे अर्थ को समझे, ब्रह्म का सही रूप जानना असंभव है।

भाष्य:

यह श्लोक यह समझाता है कि केवल वेदों का अध्ययन करने से या किसी विशेष ज्ञान को सुनने से ब्रह्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

1. आध्यात्मिक गहराई:

वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमें केवल वेदों के शाब्दिक अध्ययन से अधिक आंतरिक अनुभव और साधना की आवश्यकता होती है।
सच्चे ज्ञानी वह होते हैं जो ब्रह्म के अनुभव को अपनी आत्मा के माध्यम से समझते हैं।

2. **सत्य के खोजी:**

श्लोक हमें यह सिखाता है कि सत्य को जानने के लिए केवल बाहरी रूपों की पूजा या शास्त्रों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है।
इसे आत्मा के भीतर अनुभव करना होता है, और वह अनुभव तब मिलता है जब हम अपने भीतर से गहरे ध्यान और साधना द्वारा ब्रह्म को समझते हैं।

समीक्षा:

1. **ज्ञान और अनुभव का अंतर:**

यह श्लोक ज्ञान और अनुभव के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है।
केवल वेदों या शास्त्रों का अध्ययन बाह्य रूप से हमें सत्य नहीं बता सकता, जब तक कि हम आत्मा के भीतर गहरी साधना से उसे अनुभव न करें।

2. **आध्यात्मिक साधना का महत्व:**

श्लोक यह बताता है कि साधना और आत्म-ज्ञान से ही सच्चे ब्रह्म का अनुभव संभव है।
यह अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को मजबूत करता है, जिसमें आत्मा और ब्रह्म का अंतर समाप्त हो जाता है और वे एक ही माने जाते हैं।

सारांश:

इस श्लोक में यह कहा गया है कि ब्रह्म का सच्चा ज्ञान केवल शाब्दिक वेदों के अध्ययन से नहीं आता।
सच्चा ज्ञान आत्मा के अनुभव से आता है, और वही व्यक्ति सच्चा ज्ञानी है जो इस ज्ञान को अपने भीतर समझता है।
बाह्य रूपों और वेदों से अधिक महत्व साधना और आत्मा के अनुभव का है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
यह श्लोक यह बताता है कि बाह्य अध्ययन और शाब्दिक ज्ञान से सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।
आधुनिक जीवन में यह सिखाता है कि व्यावहारिक अनुभव और आंतरिक विकास ही हमें सच्चे ज्ञान तक पहुंचने में मदद करता है, चाहे वह जीवन की किसी भी स्थिति में हो।

मन्त्र=२//३

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥

हे नाथ !
मैं ब्रह्म से अनभिज्ञ,
सदा समझा अपने को विज्ञ
विज्ञ भी होते अनभिज्ञ हैं
मुझे ब्रह्म ज्ञान का भान कराओ,
मुझे ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान के अभिमान से परे रखो ||

शब्दार्थ:
1. **यस्य** (यस्य): जिसका। 2. **मतं** (मतं): मत, विचार। 3. **तस्य** (तस्य): उसका। 4. **न** (न): नहीं। 5. **वेद** (वेद): जानता है। 6. **सः** (सः): वह। 7. **अविज्ञातं** (अविज्ञातं): जो अपरिचित है, जो नहीं जाना गया।8. विजानतां

(विजानतां): जो जानते हैं। 9. **विज्ञातम्** (विज्ञातम्): ज्ञात, जो पहचाना गया। 10. **अविजानताम्** (अविजानताम्): जो नहीं जानते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक ज्ञान और विचार के महत्व पर ध्यान केंद्रित करता है, विशेषकर ब्रह्मज्ञान के संदर्भ में।

1. **ज्ञान का महत्व:**

यह श्लोक यह बताता है कि किसी का ज्ञान या विचार उसकी मानसिक स्थिति और समझ के आधार पर होता है।

जो किसी विषय को जानता है, वह उसके बारे में सोच और समझ सकता है, लेकिन जो नहीं जानता, उसके लिए वही चीज़ अपरिचित और अज्ञेय रहती है। ब्रह्म के संदर्भ में, जो व्यक्ति सत्य और ब्रह्म को जानता है, वही उसे सही तरीके से समझ सकता है, जबकि जो व्यक्ति इस ज्ञान से परे है, वह कभी भी उसे पूरी तरह से नहीं जान सकता।

2. **विचार और विश्वास:**

व्यक्ति के विचार और उसके विश्वास उसकी समझ पर निर्भर करते हैं। जब वह किसी वस्तु या सत्य को जानता है, तो वह उसे अपने तरीके से समझता है।

वही व्यक्ति जो इस ज्ञान से अज्ञात है, वह उस विषय को पूरी तरह से न समझने के कारण, उसे स्वीकार नहीं कर पाता।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. ज्ञान की विविधता:

शंकराचार्य ने इस श्लोक में ज्ञान की विविधता को समझाया है। वे बताते हैं कि ज्ञान प्राप्ति के लिए हमारी मानसिक अवस्था और साधना आवश्यक है।

ज्ञान प्राप्त करने से व्यक्ति को ब्रह्म के रूप का सही दर्शन होता है, लेकिन जो इस ज्ञान से दूर रहते हैं, वे भ्रम में रहते हैं और वे उसे नहीं समझ पाते।

2. आध्यात्मिक दृष्टिकोण:

शंकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म का सच्चा ज्ञान केवल उस व्यक्ति को होता है जिसने ध्यान और साधना के द्वारा आत्मा को पहचाना है।

जो व्यक्ति इस ज्ञान को प्राप्त नहीं करता, वह कभी भी ब्रह्म के असली स्वरूप को नहीं समझ सकता।

भाष्य:

यह श्लोक यह संकेत करता है कि किसी भी विषय का सही ज्ञान केवल उस व्यक्ति के पास होता है जिसने उसे आत्मसात किया है।

1. **ज्ञान का अनुभव:**

बाहरी रूपों और शाब्दिक जानकारी से अधिक महत्वपूर्ण है उस विषय का अनुभव करना।

जो व्यक्ति किसी सत्य या ब्रह्म को समझता है, वह उसे अनुभव के आधार पर सही ढंग से समझ सकता है।

2. **आध्यात्मिक जागरूकता**:

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म का ज्ञान केवल शाब्दिक और बाहरी माध्यमों से नहीं मिलता।

हमें इसे आत्मा के माध्यम से अनुभव करना होगा, और जो इसे नहीं समझते, वे कभी भी इसका सही रूप नहीं देख सकते।

समीक्षा:

1. **ज्ञान की प्रकृति:**

यह श्लोक ज्ञान की सही प्रकृति को स्पष्ट करता है। केवल बाहरी अध्ययन

और विचार से ब्रह्म का साक्षात्कार संभव नहीं है।
सच्चा ज्ञान आत्मा के अनुभव से आता है, और जो इस अनुभव से परे होते हैं, वे केवल भ्रमित होते हैं।

2. **आध्यात्मिक साधना:**
यह श्लोक यह भी दर्शाता है कि ब्रह्मज्ञान या सत्य का ज्ञान आत्मा के भीतर साधना और ध्यान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।
जो इस अनुभव से परे होते हैं, वे उस सत्य से अपरिचित रहते हैं।

सारांश:
इस श्लोक में यह कहा गया है कि किसी विषय का वास्तविक ज्ञान केवल उस व्यक्ति को होता है जिसने उसे अनुभव किया है।
सच्चा ज्ञान आत्मा के भीतर होता है और वही व्यक्ति उसे सही तरीके से जान सकता है जो साधना और ध्यान से उस ज्ञान को प्राप्त करता है।
बाहरी रूपों और शास्त्रों से केवल शाब्दिक ज्ञान मिलता है, जो ब्रह्म के असली स्वरूप से अपरिचित रहता है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
यह श्लोक यह बताता है कि बाहरी स्रोतों से केवल सतही ज्ञान ही मिलता है, जबकि सच्चा और गहरा ज्ञान आत्मा के भीतर होता है।
जीवन में हमें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए आत्म-चिंतन और साधना की आवश्यकता होती है, न कि केवल बाहरी शाब्दिक ज्ञान से।

मन्त्र=२//४

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥४॥

हे स्वामी !
आप सुधा स्वरुप ब्रह्म हो,
आपकी महिमा अपरम्पार है,
ब्रह्म का यह स्वरुप ही वास्तविक ज्ञान है,
यह ज्ञान शक्ति
ब्रह्म से ही प्राप्य है
इस ज्ञान से ही ब्रह्म ज्ञात है,
मुझे ऋत ज्ञान से परिचित कराओ ||

शब्दार्थ:
1. **प्रतिबोधविदितं** (प्रतिबोधविदितं): जो ज्ञान या चेतना के द्वारा प्रकट हो या जो जागरण से जाना जाए। 2. **मतम्** (मतम्): विचार, मत। 3. **अमृतत्वं** (अमृतत्वं): अमरता, अमृत की स्थिति। 4. **हि** (हि): निस्संदेह, निश्चित रूप से। 5. **विन्दते** (विन्दते): प्राप्त करता है। 6. **आत्मना** (आत्मना): आत्मा के द्वारा, आत्मिक रूप से। 7. **वीर्यं** (वीर्यं): शक्ति, बल। 8. **विद्यया** (विद्यया): ज्ञान से। 9. **अमृतम्** (अमृतम्): अमृत, मृत्यु के परे का जीवन।

व्याख्या:
यह श्लोक आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के महत्व को स्पष्ट करता है।
1. प्रतिबोध और आत्मज्ञान:
"प्रतिबोधविदितं मतं" से तात्पर्य है कि वास्तविक ज्ञान वही है जो आत्मा के द्वारा जागृत किया जाता है। जब व्यक्ति सत्य का बोध करता है, तो उसे अमृतता का अनुभव होता है।
आत्मज्ञान से ही मृत्यु के पार का जीवन प्राप्त होता है, अर्थात यह ज्ञान

अमरता और शाश्वतता का प्रतीक है।

2. ज्ञान और शक्ति:

श्लोक में यह भी कहा गया है कि ज्ञान व्यक्ति को न केवल अमृत (अमरता) प्रदान करता है, बल्कि यह उसे आंतरिक शक्ति (वीर्य) भी प्रदान करता है।

जब व्यक्ति आत्मा और ब्रह्म का सही ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह मानसिक और आत्मिक शक्ति प्राप्त करता है, जो उसे जीवन के संघर्षों में सक्षम बनाती है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **आध्यात्मिक ज्ञान की महिमा:**

शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि आत्मा के भीतर जो ज्ञान जागृत होता है, वही सत्य है। यह ज्ञान न केवल व्यक्ति को अमृत (अमरता) प्राप्त कराता है, बल्कि उसे आंतरिक शक्ति भी प्रदान करता है। आत्मा और ब्रह्म के सत्य के ज्ञान से व्यक्ति का उद्धार होता है, और वह मृत्यु के पार अमरता को प्राप्त करता है।

2. **आत्मज्ञान और अमृतता:**

शंकराचार्य इस श्लोक के माध्यम से यह बताते हैं कि आत्मा का ज्ञान ही सच्ची अमरता का मार्ग है। यह ज्ञान व्यक्ति को न केवल भौतिक जीवन में बल प्रदान करता है, बल्कि यह उसे मोक्ष की ओर भी मार्गदर्शन करता है।

भाष्य:

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि वास्तविक और स्थायी जीवन वही है जो आत्मज्ञान से प्राप्त होता है।

1. **आध्यात्मिक जागृति:**

जब आत्मा के भीतर सत्य का बोध होता है, तो जीवन में एक नई शक्ति का संचार होता है। यह शक्ति केवल मानसिक या शारीरिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक भी होती है।
सत्य और आत्मा का ज्ञान व्यक्ति को जीवन की सभी उलझनों से मुक्त करता है और उसे अमरता की ओर मार्गदर्शन करता है।

2. **ज्ञान और अमृतता का संबंध:**

यह श्लोक यह भी समझाता है कि ज्ञान से न केवल शक्ति मिलती है, बल्कि अमृतता, यानी मृत्यु के पार जाने की क्षमता भी प्राप्त होती है। वास्तविक अमृतता का अनुभव इस संसार की भौतिकताएँ छोड़कर आत्मा के सत्य को जानने से होता है।

समीक्षा:

1. **आध्यात्मिक शक्ति और अमृतता:**

यह श्लोक स्पष्ट रूप से यह बताता है कि आत्मज्ञान से ही जीवन में शक्ति और अमृतता दोनों प्राप्त होते हैं।
यह ज्ञान न केवल भौतिक जीवन में, बल्कि आध्यात्मिक रूप से भी व्यक्ति को सशक्त बनाता है।

2. **वास्तविक अमृतता:**

श्लोक में यह कहा गया है कि वास्तविक अमृतता केवल आत्मा और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने से मिलती है, न कि भौतिक जीवन में अर्जित किसी चीज़ से।
यह ज्ञान व्यक्ति को मृत्यु के भय से मुक्त करता है और उसे शाश्वत जीवन की ओर मार्गदर्शन करता है।

सारांश:

इस श्लोक में यह कहा गया है कि आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति को अमृतता, यानी मृत्यु के पार जीवन, प्राप्त होता है।
यह ज्ञान व्यक्ति को आंतरिक शक्ति (वीर्यं) और ब्रह्म के असली रूप का साक्षात्कार प्रदान करता है।
आत्मज्ञान से व्यक्ति जीवन के सच्चे अर्थ को समझता है और शाश्वत जीवन की ओर बढ़ता है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि सच्चा ज्ञान केवल शाब्दिक अध्ययन से नहीं, बल्कि आत्म-चिंतन और आत्मा के सत्य के बोध से प्राप्त होता है।
जीवन में आंतरिक शक्ति और स्थिरता पाने के लिए हमें इस ज्ञान को आत्मसात करना होगा, जिससे हम बाहरी संसार की अस्थिरता से परे जा सकें।

मन्त्र=२//५

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥५॥

हे नाथ !
यह सत्य है की मनुज जीवन देकर
किया कृतार्थ
दुर्लभ दुसाध्य
वर्णित वेदों में यह रहस्य

इस जन्म में ब्रह्म लीन हो अमर हो जाऊँ
ब्रह्म का साक्षात्कार कर
अमरत्व पा,
जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त करें ||

शब्दार्थ:

1. **इह** (इह): यहाँ, इस संसार में। 2. **चेद्** (चेद्): यदि। 3. **वेदीत** (वेदीत): जानता है। 4. **सत्यम्** (सत्यम्): सत्य। 5. **न** (न): नहीं। 6. **चेद्** (चेद्): यदि। 7. **हावेदीन्** (हावेदीन्): नहीं जानता है। 8. **महती** (महती): महान, बड़ी। 9. **विनष्टिः** (विनष्टिः): विनाश, नष्ट होना। 10. **भूतेषु** (भूतेषु): सभी प्राणियों में। 11. **विचित्य** (विचित्य): देखकर, जानकर। 12. **धीराः** (धीराः): समझदार, ज्ञानियों। 13. **प्रेत्या** (प्रेत्या): मरकर। 14. **आस्मिन** (आस्मिन): इस। 15. **लोक** (लोक): संसार, लोक। 16. **अमृताः** (अमृताः): अमर, मृत्यु के पार। 17. **भवन्ति** (भवन्ति): होते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक सत्य के ज्ञान और उसके परिणाम के बारे में है।

1. **सत्य का ज्ञान:**

इस श्लोक में यह कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति इस संसार में सत्य का ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह जीवन के असली उद्देश्य को जानता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति सत्य से अनजान रहता है, वह महान विनाश का भागी बनता है।

सत्य का ज्ञान न केवल जीवन को सही दिशा में ले जाता है, बल्कि यह व्यक्ति को आत्मिक उन्नति और शाश्वत जीवन की ओर भी मार्गदर्शन करता है।

2. **सत्य को जानने का परिणाम:**
जो लोग प्राणियों में, यानी सभी जीवों में, सत्य को देखते हैं और समझते हैं, वे अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को पहचानते हैं। वे मृत्यु के बाद अमर होते हैं।
यहाँ "अमृत" का अर्थ है ब्रह्म के साथ एकात्मता, और वे लोग जो सत्य के मार्ग पर चलते हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है।

शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):

1. **सत्य के ज्ञान का महत्व:**
शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के महत्व को दर्शाता है। जो व्यक्ति सत्य को जानता है, वह न केवल इस जीवन में बल्कि मृत्यु के बाद भी अमर रहता है।
सत्य का बोध ही व्यक्ति को मृत्यु के डर से मुक्त करता है और उसे शाश्वत सुख प्रदान करता है।
2. **सभी प्राणियों में सत्य का अनुभव:**
शंकराचार्य यह बताते हैं कि जो व्यक्ति प्रत्येक प्राणी में ब्रह्म या सत्य को पहचानता है, वह आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर है। उसे जीवन और मृत्यु के रहस्यों का सही ज्ञान होता है।

भाष्य:
यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि सत्य का ज्ञान ही जीवन का उद्देश्य है।
1. **सत्य का मार्ग:**
सत्य को जानने से व्यक्ति को न केवल इस जीवन की परेशानियों का समाधान मिलता है, बल्कि यह उसे मृत्यु के पार जाने का मार्ग भी प्रदान करता है।

सत्य का ज्ञान, जिसे शास्त्रों में ब्रह्मज्ञान कहा जाता है, व्यक्ति को आंतरिक शांति और मोक्ष की ओर ले जाता है।

2. **जीवों में सत्य का दर्शन:**

जब व्यक्ति सभी जीवों में और प्रत्येक वस्तु में ब्रह्म को देखता है, तब वह वास्तविक शांति और संतोष का अनुभव करता है।

वह व्यक्ति जीवन के कष्टों को समझ कर, उन पर विजय प्राप्त करता है और मृत्यु से परे अमरता को प्राप्त करता है।

समीक्षा:

1. **सत्य का बोध:**

यह श्लोक यह स्पष्ट करता है कि सत्य का ज्ञान ही जीवन की सबसे बड़ी प्राप्ति है। जब व्यक्ति सत्य का बोध करता है, तो वह न केवल अपने जीवन को समझता है, बल्कि उसे सही दिशा भी मिलती है।

सत्य के ज्ञान से ही व्यक्ति मृत्यु के पार शाश्वत जीवन को प्राप्त करता है।

2. आध्यात्मिक उन्नति:

इस श्लोक में यह भी संकेत मिलता है कि सत्य का ज्ञान हमें आत्मिक उन्नति और मोक्ष की ओर ले जाता है। यह जीवन की भौतिक समस्याओं से ऊपर उठने का मार्ग है।

सारांश:

इस श्लोक में यह कहा गया है कि सत्य का ज्ञान जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। जो व्यक्ति सत्य को जानता है, वह न केवल इस जीवन में, बल्कि मृत्यु के बाद भी अमरता प्राप्त करता है।

सत्य का ज्ञान व्यक्ति को जीवन की सही दिशा दिखाता है और उसे मृत्यु से मुक्त कर, शाश्वत जीवन की प्राप्ति में मदद करता है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:

यह श्लोक यह बताता है कि हमें अपने जीवन में सत्य को पहचानने की आवश्यकता है, ताकि हम जीवन की सच्चाई को समझ सकें और आंतरिक शांति प्राप्त कर सकें।

सत्य का ज्ञान हमें बाहरी भ्रामकताओं से ऊपर उठने में मदद करता है और हमें आत्मिक सुख और शांति प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है।

तृतीय खंड

मन्त्र=३//१

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त ।
त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१॥

हे जगतस्वामी !
अभिमानी देवों ने
माना ब्रह्म स्वयं को
अहम में अतिशय परिणित
विनाशक अहम होता,
देवता तो निमित हैं,
ब्रह्म सर्वोपरि हैं,
आप शक्ति स्वरुप अजेय हैं,
सदा रक्षा करें ||

शब्दार्थ:

1. **ब्रह्म** (ब्रह्म): परमात्मा, सर्वोत्तम सत्य। 2. **ह** (ह): निश्चय ही, निश्चित रूप से। 3. **देवेभ्यः** (देवेभ्यः): देवताओं से, देवताओं द्वारा। 4. **विजिग्ये**

(विजिग्ये): जीतने के योग्य, जिसे विजय प्राप्त हो। 5. **तस्य** (तस्य): उसका, उस ब्रह्म का। 6. **ह** (ह): निश्चय ही। 7. **ब्रह्मणो** (ब्रह्मणो): ब्रह्मा का। 8. **विजये** (विजये): विजय में। 9. **देवा** (देवा): देवता। 10. **अमहियन्त** (अमहियन्त): अभिमानित हो गए, माने गए। 11. **त** (त): वह। 12. **ऐक्षन्त** (ऐक्षन्त): उन्होंने देखा। 13. **आस्माकम्** (आस्माकम्): हमारा। 14. **एवं (**एवं): इस प्रकार। 15. **विजयः** (विजयः): विजय। 16. **महिमेति** (महिमेति): महिमा, महानता।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म की महानता और देवताओं के सामर्थ्य को दर्शाता है।

1. ब्रह्म की विजय:

इस श्लोक में यह बताया गया है कि ब्रह्म ने देवताओं पर विजय प्राप्त की। यहाँ "विजिग्ये" से तात्पर्य है कि ब्रह्म ने उन देवताओं से महानता में बढ़कर विजय प्राप्त की।

यह विजय केवल देवताओं के भीतर छिपी हुई शक्ति या बल को परास्त करने के रूप में नहीं, बल्कि परमात्मा के सर्वोत्तम और अनंत सत्य के अस्तित्व की पुष्टि करने के रूप में है।

2**. देवताओं का अभिमान और निरीक्षण:**

जब ब्रह्म की विजय हुई, तो देवताओं ने इस विजय को देखा और उन्हें यह एहसास हुआ कि यह विजय और महिमा केवल उनके (ब्रह्म) से ही संबंधित है।

यह दर्शाता है कि देवताओं ने यह माना कि केवल ब्रह्म ही सर्वोच्च है, और उनका कार्य उस ब्रह्म के माध्यम से ही संभव है।

शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):

1**. ब्रह्म का सर्वोत्तमत्व:**

शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक ब्रह्म के सर्वोत्तम और परिपूर्ण होने को दर्शाता है। देवताओं का सामर्थ्य ब्रह्म से ही उत्पन्न होता है, और ब्रह्म ही देवताओं से भी श्रेष्ठ है।

2. **ब्रह्म के माध्यम से विजय:**

शंकराचार्य यह बताते हैं कि ब्रह्म की विजय इस बात का प्रतीक है कि केवल ब्रह्म ही आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचानने में सक्षम है और देवताओं का सर्वश्रेष्ठता से कोई मुकाबला नहीं है।

भाष्य:

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म ही सभी शक्ति और सामर्थ्य का स्रोत है, और देवता, जो महान प्रतीत होते हैं, वह भी ब्रह्म की शक्ति से प्रभावित होते हैं।

1. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

यह श्लोक यह दिखाता है कि ब्रह्म के सामने देवताओं की शक्ति भी नगण्य है। यही कारण है कि ब्रह्म का ज्ञान और अनुभव सर्वोपरि है।

ब्रह्म को जानने से व्यक्ति न केवल शक्ति प्राप्त करता है, बल्कि सत्य की असली महिमा को भी पहचानता है।

2. **देवताओं का सत्य:**

जब देवताओं ने देखा कि ब्रह्म की विजय से उनकी स्वयं की स्थिति परिपूर्ण हो गई, तो वे भी इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म ही सर्वशक्तिमान है।

समीक्षा:

1. ब्रह्म की महिमा:

इस श्लोक में ब्रह्म की महिमा को स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। ब्रह्म का प्रभाव न केवल जीवों, बल्कि देवताओं पर भी पड़ता है, और यह ज्ञान उन्हें सर्वश्रेष्ठ के रूप में स्थापित करता है।

2. आध्यात्मिक शिक्षा:

यह श्लोक यह सिखाता है कि जीवन में सत्य और ब्रह्म का अनुभव सबसे बड़ी विजय है। देवताओं को भी यह सत्य स्वीकार करना पड़ा कि ब्रह्म ही उनका सर्वोत्तम स्रोत है।

सारांश:

इस श्लोक में ब्रह्म की महिमा और देवताओं से उसकी विजय को दर्शाया गया है। ब्रह्म ने देवताओं से श्रेष्ठता प्राप्त की, और देवताओं ने स्वीकार किया कि यह विजय और महिमा केवल ब्रह्म की है।

यह श्लोक ब्रह्म के अस्तित्व और उसकी सर्वोत्तमता को स्थापित करता है और यह संदेश देता है कि ब्रह्म ही परम सत्य है, जो सभी शक्तियों और शक्तिमान प्राणियों से ऊपर है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:

इस श्लोक को आज के संदर्भ में समझते हुए हम यह कह सकते हैं कि हमें ब्रह्म (सत्य) का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह हमें न केवल जीवन की वास्तविकता का बोध कराता है, बल्कि हमें आत्मिक और मानसिक शांति भी प्रदान करता है।

मन्त्र=३//२

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति॥२॥

हे नाथ !
देवगण होते मिथ्याभिमानी
आप अनभिज्ञ नही,
यक्ष के रूप पधारते आप हित दर्प नाश को,
आप के दिव्य रूप देख
देवगण असमंजित हैं
आप सर्व हित वर्धक बनें रहें ||

शब्दार्थ:

1. **तत्** (तत्): वह, उस ब्रह्म। 2. **ह** (ह): निश्चय ही। 3. **ईषां** (ईषां): उनका। 4. **विजज्ञौ** (विजज्ञौ): विजय प्राप्त करने वाला, जो जानता है या जिसने विजय प्राप्त की। 5. **तेभ्यः** (तेभ्यः): उनके लिए, उन देवताओं के लिए। 6. **प्रादुर्बभूव** (प्रादुर्बभूव): प्रकट हुआ, प्रकट हुआ। 7. **तन्न** (तन्न): वह, उसका (उसी ब्रह्म का)। 8. **व्यजानत** (व्यजानत): जानना, समझना। 9. **किमिदं** (किमिदं): यह क्या है, इस रूप में क्या है। 10. **यक्ष** (यक्ष): यक्ष, इस संदर्भ में शायद कोई दिव्य शक्ति या देवता, जो अलौकिक होते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म के रहस्यमय रूप और देवताओं के सीमित ज्ञान को दर्शाता है।

1. **ब्रह्म का प्रकट होना:**

इस श्लोक में यह बताया गया है कि वह ब्रह्म, जिसे देवताओं ने पहचाना था और जिसे उन्होंने अनुभव किया, वह उनके लिए एक रहस्य बनकर प्रकट हुआ। देवताओं ने इस प्रकट हुए ब्रह्म के रूप और शक्ति को सही से नहीं

पहचाना। यह दर्शाता है कि ब्रह्म का स्वरूप इतना अद्वितीय और अपरिभाषित है कि किसी भी साधारण समझ से परे होता है।

2. **देवताओं की सीमित समझ:**

देवता, जो स्वयं अद्भुत शक्तियों वाले होते हैं, वे भी इस ब्रह्म के सच्चे स्वरूप को पहचानने में सक्षम नहीं थे। उनका ज्ञान और शक्ति सीमित थे, और वे यह समझ नहीं पाए कि यह कौन सा दिव्य रूप था।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **ब्रह्म का रहस्यमय रूप:**

शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक ब्रह्म के अद्वितीय और अप्रकट रूप की ओर इशारा करता है। देवताओं को भी इस ब्रह्म का सही रूप समझने में कठिनाई हुई क्योंकि ब्रह्म निराकार, अनिर्वचनीय और अनन्त है।

2. **देवताओं की सीमाएं:**

शंकराचार्य यह भी बताते हैं कि देवताओं के पास यद्यपि शक्तियां हैं, वे भी ब्रह्म के परम रूप को नहीं पहचान सकते, क्योंकि यह रूप उनके ज्ञान से बाहर है।

भाष्य:

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप हमें साधारण साधनों से नहीं मिल सकता।

1. **ब्रह्म का अनिर्वचनीय स्वरूप:**

ब्रह्म का स्वरूप इतना अपार और अद्वितीय है कि देवता भी इसे पूरी तरह से नहीं समझ पाए। इस श्लोक से यह शिक्षा मिलती है कि ब्रह्म को जानने के लिए न केवल बाहरी साधनों की आवश्यकता है, बल्कि एक गहन आंतरिक अनुभव की भी आवश्यकता होती है।

2. **ज्ञान की सीमाएं:**
यह श्लोक यह दर्शाता है कि भले ही कोई देवता या महान शक्ति वाला व्यक्ति हो, वह भी ब्रह्म के सत्य स्वरूप को नहीं पहचान सकता, जब तक वह आत्मज्ञान प्राप्त नहीं करता।

समीक्षा:

1. **ब्रह्म का अपरिभाषित रूप:**
इस श्लोक में ब्रह्म के अपरिभाषित और अनिर्वचनीय स्वरूप का उल्लेख किया गया है, जिसे कोई भी साधारण या देवता भी पूरी तरह से समझने में असमर्थ हैं।

2. **आध्यात्मिक पाठ:**
यह श्लोक यह सिखाता है कि बाहरी दृष्टि से कोई भी शक्तिशाली या श्रेष्ठ व्यक्ति ब्रह्म को पूरी तरह से पहचानने में सक्षम नहीं हो सकता है, क्योंकि यह केवल गहन आत्म-बोध के द्वारा जाना जा सकता है।

सारांश:
इस श्लोक में यह बताया गया है कि देवताओं ने ब्रह्म को देखा, लेकिन वे उसके रूप और शक्ति को नहीं पहचान सके। यह श्लोक ब्रह्म के अपरिभाषित और अद्वितीय स्वरूप को दर्शाता है।
यह यह भी संकेत करता है कि ब्रह्म का अनुभव और ज्ञान प्राप्त करने के लिए केवल आंतरिक जागरूकता और आत्मज्ञान की आवश्यकता होती है।

आधुनिक संदर्भ में उपयोग:
इस श्लोक का आधुनिक संदर्भ यह हो सकता है कि हम कभी भी ब्रह्म या

सर्वोच्च सत्य को सिर्फ बाहरी साधनों और दृष्टिकोणों से नहीं जान सकते। हमें आंतरिक अनुभव, साधना और ध्यान के माध्यम से ही उसकी सच्चाई और महानता का बोध हो सकता है।

मन्त्र =३//३

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ॥३॥

हे स्वामी !
जब अग्नि देव से विनम्र कहा गया,
दिव्य यक्ष हैं महा
तज अपनी बुद्धि शक्ति का गर्व
अग्नि देव स्वीकारें यक्ष शक्ति को भान
नाथ मुझे भी दीजिये ज्ञान ||

शब्दार्थ:

1. **ते** (ते): उन (देवताओं) ने। 2. **अग्निम** (अग्निम): अग्नि को (यहां अग्नि से तात्पर्य शायद उस अद्वितीय दिव्य शक्ति से है)। 3. **अब्रुवन्** (अब्रुवन्): कहा, बोले। 4. **जातवेद** (जातवेद): जिसे सर्वज्ञानी, ज्ञान का ज्ञाता कहा जाता है (यह शब्द अग्नि देवता के लिए भी प्रयोग किया जाता है)। 5. **एतद्विजानीहि** (एतद्विजानीहि): यह जानो, यह समझो। 6. **किमिदं** (किमिदं): यह क्या है? 7. **यक्ष** (यक्ष): यक्ष, एक अलौकिक अस्तित्व या दिव्य शक्ति। 8. **इति** (इति): इस प्रकार। 9. **तथेति** (तथेति): उन्होंने कहा, "ऐसा ही है।"

व्याख्या:

इस श्लोक में देवताओं की अग्नि के प्रति निष्ठा और उनका ब्रह्म के रूप में ज्ञान की प्राप्ति का चित्रण है।

1. **अग्नि को ज्ञान का स्रोत माना गया:**

यहाँ अग्नि को 'जातवेद' कहा गया है, अर्थात वह सर्वज्ञ है, जो सभी वेदों और ज्ञान का भंडार है। देवता, जो ब्रह्म के स्वरूप को समझने की कोशिश कर रहे थे, अग्नि से यह पूछते हैं कि यह अद्वितीय शक्ति क्या है।

2. **अग्नि का उत्तर:**

अग्नि ने उत्तर दिया कि यह वही है, जो तुम्हें चाहिए, वही ब्रह्म है। उसका उत्तर संक्षिप्त और स्पष्ट था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म का रूप अनिर्वचनीय और अपरिभाषित है, और इसे किसी विशेष रूप में सीमित नहीं किया जा सकता।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **अग्नि के माध्यम से ज्ञान:**

शंकराचार्य के अनुसार, अग्नि के पास वह अद्वितीय ज्ञान है जो ब्रह्म की वास्तविकता को प्रकट करता है। अग्नि का 'जातवेद' होना यह दर्शाता है कि वह ब्रह्म का प्रतीक है, जो ब्रह्म के स्वरूप को जानता है।

2. **ब्रह्म की पहचान:**

शंकराचार्य इस बात पर बल देते हैं कि अग्नि ने ब्रह्म के रूप में ज्ञान का संप्रेषण किया है, हालांकि यह ज्ञान केवल आंतरिक अनुभव से ही समझा जा सकता है। ब्रह्म की असली पहचान को किसी बाहरी शक्ति या रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भाष्य:

यह श्लोक हमें यह शिक्षा देता है कि ब्रह्म की वास्तविकता और शक्ति को समझने के लिए हमें न केवल बाहरी दृष्टिकोण से, बल्कि आंतरिक, आत्मिक दृष्टिकोण से उस सत्य को महसूस करना होगा।

1. **ब्रह्म की परिभाषा नहीं दी जा सकती:**

जब अग्नि से पूछा गया कि यह अद्वितीय शक्ति क्या है, तो उसने कोई विस्तृत विवरण नहीं दिया, केवल यह कहा कि यही वह शक्ति है। यह दर्शाता है कि ब्रह्म की असली पहचान शब्दों से नहीं की जा सकती, इसे अनुभव से समझना होता है।

2. ज्ञान का स्रोत:

अग्नि के माध्यम से यह संदेश भी मिलता है कि ज्ञान का वास्तविक स्रोत वह ब्रह्म है, जो हमारे भीतर है और जो बाहरी रूपों के पार है। हमें केवल इस सत्य को पहचानने की आवश्यकता है।--

समीक्षा:

1**. ब्रह्म का अपरिभाषित रूप:**

इस श्लोक में अग्नि द्वारा दी गई संक्षिप्त लेकिन गहरी समझ यह सिखाती है कि ब्रह्म का कोई स्थिर रूप या वर्णन नहीं किया जा सकता, इसे अनुभव और आत्मज्ञान के माध्यम से जाना जा सकता है।

2. **ज्ञान की सीमा:**

श्लोक यह दर्शाता है कि दिव्य शक्तियां, जैसे अग्नि, अपने ज्ञान के माध्यम से ब्रह्म के रूप को पहचानती हैं, परन्तु इसे व्यक्त करना शब्दों से संभव नहीं है। यह आत्मज्ञान की ओर संकेत करता है।

सारांश:

इस श्लोक में अग्नि से ब्रह्म के रूप और शक्ति के बारे में पूछा गया, और अग्नि ने यह स्पष्ट किया कि वही ब्रह्म है, जिसका ज्ञान वह रखता है।
यह श्लोक ब्रह्म के अप्रकट रूप को दर्शाता है और यह सिखाता है कि उसे केवल अनुभव के द्वारा ही समझा जा सकता है।
ज्ञान और ब्रह्म के सत्य को पहचानने के लिए हमें अपने आंतरिक जागरण की आवश्यकता होती है, जो बाहरी रूपों और शब्दों से परे होता है।

मन्त्र=३//४

तदभ्यद्रवत्तमभ्य वदत्कोऽसीत्यग्निर्वा ।
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥४॥

हे नाथ !
एक प्रश्न अग्नि देव से-
क्या सर्वभौम मंयक देव आप ही हैं?
तेजपुंज स्वरुप, जातवेदा बताया अग्नि देव ने,

शब्दार्थ: 1. **तदभ्य** (तदभ्य): उससे, उस (ब्रह्म) से संबंधित। 2. **द्रवत्तम** (द्रवत्तम): वे, जो गतिमान हैं, जो प्रतिक्रिया देते हैं। 3. **वदत** (वदत): कहने वाला। 4. **कोऽसी** (कोऽसी): तू कौन है? 5. **अग्निः** (अग्निः): अग्नि। 6. **वा** (वा): या। 7. **अहमस्मि** (अहमस्मि): मैं हूं, अस्तित्व में हूं। 8. **ब्रवीत** (ब्रवीत): उसने कहा। 9. **जातवेदा** (जातवेदा): सर्वज्ञ, जो सब कुछ जानता है। 10. **वाः** (वाः): या।

व्याख्या:

इस श्लोक में अग्नि और ब्रह्म के संवाद को प्रस्तुत किया गया है। जब अग्नि ने ब्रह्म से पूछा, "तुम कौन हो?" तो ब्रह्म ने उत्तर दिया, "मैं हूं," अर्थात "अहमस्मि," यानी मैं वही सर्वव्यापी ब्रह्म हूं।

1. अग्नि का प्रश्न:

अग्नि, जो सर्वज्ञ और दिव्य है, ने ब्रह्म से पूछा कि वह कौन है, क्योंकि ब्रह्म का स्वरूप इतना अपरिभाषित और रहस्यमय है कि उसे पहचानना आसान नहीं है।

2. ब्रह्म का उत्तर:

ब्रह्म ने संक्षिप्त और स्पष्ट उत्तर दिया, "अहमस्मि" (मैं हूं)। यह उत्तर अत्यंत गहन है, क्योंकि यह ब्रह्म के अद्वितीय और निराकार रूप को दर्शाता है, जो केवल अनुभव और आत्मबोध के द्वारा पहचाना जा सकता है। ब्रह्म का स्वरूप न तो वर्णन से व्यक्त किया जा सकता है और न ही किसी निश्चित रूप में निर्धारित किया जा सकता है। यह सत्य स्वयं को अनुभव करने की स्थिति में व्यक्त होता है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. अहमस्मि का महत्व:

शंकराचार्य के अनुसार, "अहमस्मि" का उत्तर केवल ब्रह्म का साक्षात्कार है, जो निर्गुण, निराकार और अनिर्वचनीय है। यह शब्द आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीय स्वरूप की पहचान को दर्शाता है।

2. अग्नि का प्रश्न और ब्रह्म का उत्तर:

शंकराचार्य यह बताते हैं कि जब अग्नि ने ब्रह्म से पूछा, तो ब्रह्म ने "अहमस्मि" से संकेत किया कि वह सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और निराकार ब्रह्म है, जो अंतर्निहित सत्य है।

भाष्य:

1. आध्यात्मिक उत्तर:

यह श्लोक एक गहन और आध्यात्मिक सत्य को व्यक्त करता है। ब्रह्म का उत्तर "अहमस्मि" यह दर्शाता है कि सत्य और ब्रह्म स्वयं के अस्तित्व में समाहित होते हैं। यह उत्तर एक गहरी समझ को प्रेरित करता है कि हर आत्मा में वही ब्रह्म है, और हमें इसे पहचानने की आवश्यकता है।

2. ब्रह्म का अद्वितीय स्वरूप:

"अहमस्मि" शब्द में ब्रह्म का स्वीकृत और परम सत्य निहित है। यह शब्द हमें यह बताता है कि ब्रह्म न केवल अन्यथा और अपरिभाषित है, बल्कि वह हमारे भीतर का सत्य है, जिसे पहचानने की आवश्यकता है।

समीक्षा:

1. ब्रह्म का निराकार रूप:

इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म न तो किसी एक रूप में सीमित है और न ही किसी एक विशेषता से। वह निराकार और अपरिभाषित है, और केवल "अहमस्मि" के रूप में प्रकट होता है।

2. आध्यात्मिक दृष्टिकोण:

इस श्लोक का संदेश यह है कि ब्रह्म का अद्वितीय स्वरूप शब्दों या विचारों से बाहर है। इसका सही बोध केवल आत्मज्ञान और ध्यान के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है।

सारांश:

इस श्लोक में ब्रह्म ने "अहमस्मि" (मैं हूं) कहकर अपनी असली पहचान प्रकट की। यह उत्तर ब्रह्म के निराकार और अद्वितीय स्वरूप को दर्शाता है, जिसे केवल आंतरिक अनुभव से ही समझा जा सकता है।

यह श्लोक हमें यह भी सिखाता है कि ब्रह्म का ज्ञान हमें अपनी आंतरिक साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त होता है, न कि बाहरी शब्दों से।

मन्त्र=३//५

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥

हे जातवेदा, क्या सर्व शक्तिमान हैं आप?
सगर्व दिया उत्तर अग्निदेव ने,
धरा पर जो कुछ भी है सब मेरी सामर्थ्य
करूँ भष्म
कुछ भी नही मुझसे असामर्थ्य |

शब्दार्थ:
1. **तस्मिन** (तस्मिन्): उसमें, उस (ब्रह्म) में। 2. **त्वयि** (त्वयि): तुम में। 3. **किं** (किं): क्या, कौन सा। 4. **वीर्यम्** (वीर्यम्): शक्ति, सामर्थ्य। 5. **इति** (इति): इस प्रकार। 6. **अपी** (अपि): भी। 7. **एतं** (एतं): इस (ब्रह्म को)। 8. **सर्वं** (सर्वं): सब, सम्पूर्ण। 9. **दहेयं** (दहेयं): जलाऊँगा, जलने योग्य। 10. **यदिदं** (यदिदं): जो यह (संसार) है। 11. पृथिव्याम् (पृथिव्याम्): पृथ्वी में, इस पृथ्वी पर।

व्याख्या:
यह श्लोक ब्रह्म के शक्ति और उसकी पराक्रम की ओर संकेत करता है। जब ब्रह्म या परम सत्य की शक्ति को पहचाना जाता है, तो वह समग्र संसार को

प्रभावित करने की सामर्थ्य रखता है।

1. **तस्मिन्सं के संदर्भ में ब्रह्म का असाधारण सामर्थ्य:**

इस श्लोक में, अग्नि या अन्य देवता ने ब्रह्म से पूछा था कि उसकी शक्ति क्या है। इस पर ब्रह्म ने उत्तर दिया कि उसकी शक्ति इतनी विशाल है कि वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को समाप्त करने की क्षमता रखता है।

2. **शक्ति का निराकार स्वरूप:**

ब्रह्म का वह शक्तिशाली रूप, जो अद्वितीय और असीम है, वह किसी एक आकार या रूप में नहीं है। यह शक्ति सम्पूर्ण पृथ्वी और ब्रह्माण्ड के भीतर विद्यमान है, और इसे यदि ब्रह्म चाहता है, तो वह सम्पूर्ण संसार को नष्ट कर सकता है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **ब्रह्म की शक्ति:**

शंकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म की शक्ति अनन्त और अपरिमेय है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान है, और उसकी शक्ति किसी भी रूप में सिमित नहीं की जा सकती। यदि ब्रह्म चाहें, तो वे इस सम्पूर्ण पृथ्वी और सृष्टि को समाप्त कर सकते हैं।

2. **सृष्टि के नाश का संकेत:**

ब्रह्म की शक्ति का वर्णन यह संकेत देता है कि वह न केवल निर्माण करता है, बल्कि संहार भी करता है। यह शाश्वत सत्य है कि ब्रह्म का कार्यक्षेत्र सृष्टि के निर्माण, पालन और संहार के रूप में प्रकट होता है।

भाष्य:

1. **सशक्त ब्रह्म:**

इस श्लोक में ब्रह्म के शक्तिशाली रूप का वर्णन किया गया है। ब्रह्म को

समझने का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वह केवल सृजनकर्ता ही नहीं है, बल्कि वह संहारक भी है। वह जिस क्षण चाहे, संपूर्ण पृथ्वी और संसार को समाप्त कर सकता है।

2. **सार्वभौमिक शक्तियां:**

ब्रह्म के पास वह शक्ति है जो न केवल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करती है, बल्कि उसकी निगरानी भी करती है। यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि हमें अपनी शक्ति का सही उपयोग करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म में शक्ति का निरंतर संतुलन होता है।

समीक्षा:

1. **सशक्त ब्रह्म का स्वरूप:**

श्लोक में ब्रह्म की असीम शक्ति को प्रमुखता से दर्शाया गया है। यह परिभाषित करता है कि ब्रह्म का स्वरूप न केवल शांत और सौम्य है, बल्कि उसमें संहार करने की भी अपार क्षमता है।

2. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

यह श्लोक हमें यह समझाने की कोशिश करता है कि ब्रह्म का स्वरूप केवल हम सभी के भीतर नहीं है, बल्कि उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की शक्ति भी निहित है। यह चेतावनी भी देता है कि जो शक्ति इतनी महान है, वह सृष्टि को विनष्ट भी कर सकती है।

सारांश:

इस श्लोक में ब्रह्म का परम सामर्थ्य और शक्ति को प्रस्तुत किया गया है, जो किसी भी रूप में नष्ट करने की क्षमता रखता है। यह ब्रह्म के निराकार और अपरिमेय रूप को दर्शाता है। ब्रह्म का प्रत्येक रूप सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है।

मन्त्र=३//५

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति । तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक ।
दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥६॥

एक तृण धर कहा
यक्ष ने भस्म कर तो जानूँ
आपकी अग्नि सामर्थ्य को मैं मानूँ
पूर्ण दाहक शक्ति व्यर्थ हुई
हतप्रभ थे देव
अनभिज्ञ अग्नि देव हुए हतप्रभ ||

शब्दार्थ:

1. **तस्मै** (तस्मै): उसे, उस (ब्रह्म) को। 2. **तृणं** (तृणं): घास। 3. **निदधावेत** (निदधावेत): वह डालता है, वह स्थापित करता है। 4. **दहेति** (दहेति): वह जलाने के लिए कहता है। 5. **तदुपप्रेयाय** (तदुपप्रेयाय): वह उसकी ओर बढ़ता है, उस पर विचार करता है। 6. **सर्वजवेन** (सर्वजवेन): सभी तेज या गति के साथ। 7. **तन्न** (तन्न): उसे नहीं। 8. **शशाक** (शशाक): वह कर सका, वह न कर सका। 9. **दग्धुं** (दग्धुं): जलाना। 10. **स** (स): वह। 11. **तत** (तत): वही। 12. **एव** (एव): केवल। 13. **निववृते** (निववृते): वापस लौटने का कार्य। 14. **नैतद** (नैतद): यह नहीं है। 15. **अशकं** (अशकं): असंभव, नहीं कर सका। 16. **विज्ञातुं** (विज्ञातुं): जानना। 17. **यदेतद** (यदेतद): जो यह है, जिसे यह कहते हैं। 18. **यक्षम्** (यक्षम्): शक्ति या कार्य।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म की असीमित शक्ति और हमारी सीमाओं को प्रदर्शित करता है। जब किसी ने घास को जलाने के लिए प्रयास किया, तो उसे इसे जलाने में असमर्थता का सामना करना पड़ा। यह उदाहरण इस तथ्य को बताता है कि ब्रह्म के समान शक्तिशाली और अपार शक्ति को न तो तर्क से समझा जा सकता है और न ही साधारण प्रयासों से उसे पहचाना जा सकता है।

1. घास और आग का प्रतीक:

यहाँ घास को ब्रह्म की शक्ति से तुलना की गई है, जिसे जलाने की कोशिश की जाती है, लेकिन वह असफल रहती है। यह उदाहरण है यह दिखाने का कि हम ब्रह्म के अपरिमेय स्वरूप को समझने में नाकाम रहते हैं, चाहे हम कितने भी प्रयास करें।

2. **ब्रह्म का अत्यधिक विरोधाभास:**

ब्रह्म का स्वरूप अत्यधिक विरोधाभासी है, और वह न केवल अस्तित्व में है, बल्कि उसे समझना अत्यंत कठिन है। घास जलाने के लिए एक साधारण प्रयास किया जाता है, लेकिन जो कार्य करना असंभव हो जाता है, वह इस ब्रह्म के गहरे सत्य को जानने का संकेत है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **विरुद्ध कार्य और ब्रह्म का ज्ञान:**

शंकराचार्य ने यह स्पष्ट किया कि ब्रह्म की सच्चाई को जानना असंभव है जब तक उसे पूर्ण रूप से न अनुभव किया जाए। तृण का जलना प्रतीकात्मक है, और यह बताता है कि जब तक ब्रह्म का साक्षात्कार न हो, तब तक उसके वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयास असफल रहेगा।

2. **अज्ञानता का कारण:**

यहाँ असफलता का कारण हमारी अज्ञानता है। जैसे तृण जलाने के प्रयास में असफल होते हैं, वैसे ही ब्रह्म को समझने में हमें अपनी सीमाओं और अज्ञानता का सामना करना पड़ता है।

भाष्य:

1. **अनुभव से ज्ञान:**

इस श्लोक का गहरा अर्थ यह है कि ब्रह्म का ज्ञान केवल अनुभव से प्राप्त होता है। तर्क और विचार से उसे पकड़ा नहीं जा सकता है, जैसे तृण को आग में डालकर जलाना संभव नहीं था।

2. **समझ का विस्तार:**

यह श्लोक यह समझाता है कि हमें ब्रह्म को जानने के लिए आंतरिक अनुभव की आवश्यकता है। साधारण प्रयासों और समझ से यह सत्य हमें उपलब्ध नहीं हो सकता, जब तक हम स्वयं का आत्मबोध नहीं कर लेते।

समीक्षा:

1. **अध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म का अनुभव एक गहरे साधना और ध्यान के बिना असंभव है। यह सामान्य ज्ञान से परे है और सिर्फ आंतरिक दृष्टि से ही प्राप्त किया जा सकता है।

2. **प्रतिकात्मक अर्थ:**

तृण और जलाने की प्रक्रिया से यह प्रतीत होता है कि हम जब तक ब्रह्म को भीतर से अनुभव नहीं करेंगे, तब तक बाहर के प्रयास और साधन नाकाम रहेंगे।

सारांश:

यह श्लोक ब्रह्म के अद्वितीय और अपार स्वरूप को समझने की कठिनाई को दर्शाता है। जैसा कि तृण को जलाने में असमर्थता व्यक्त की जाती है, वैसे ही ब्रह्म के सच्चे रूप को समझने में हम असफल हो जाते हैं, जब तक हम उस ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए तैयार नहीं होते।

मन्त्र=३//७

अथ वायुमब्रुवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥७॥

हे दिव्य देव !
कौन हैं पूछे आप
क्या आप ही हैं सार्वभौम?
हे अहम मंयक वायुदेव!

शब्दार्थ:

1. **अथ** (अथ): तब, इसके बाद। 2. **वायुम्** (वायुम्): वायु। 3. **अब्रुवन्** (अब्रुवन्): उन्होंने कहा, यह कहने लगे। 4. **वायवे** (वायवे): वायु के लिए। 5. **एतद्** (एतद्): यह। 6. **विजानीहि** (विजानीहि): तुम जानो। 7. **किम्** (किम्): क्या। 8. **एतद्** (एतद्): यह। 9. **अक्षम्** (अक्षम्): असमर्थ, सक्षम नहीं। 10. **इति** (इति): इस प्रकार। 11. **तथेति** (तथेति): इसी प्रकार (उसने उत्तर दिया)।

व्याख्या:

यह श्लोक वायु देवता और ब्रह्म के बीच संवाद को दर्शाता है। वायु ने ब्रह्म से यह पूछा कि क्या यह कार्य संभव है, तो ब्रह्म ने यह उत्तर दिया कि यह कार्य असंभव नहीं है, अर्थात ब्रह्म की शक्ति से कोई भी कार्य किया जा

सकता है। यहाँ पर वायु का उदाहरण ब्रह्म के शक्ति को समझने के प्रयास के रूप में लिया जाता है।

1. **वायु का प्रश्न:**

वायु ने ब्रह्म से यह पूछा कि क्या यह कार्य (ब्रह्म के स्वरूप को जानना) संभव है। वायु ने इस प्रश्न के माध्यम से ब्रह्म की शक्ति के बारे में समझने की कोशिश की।

2. **उत्तर में असंभवता का खंडन:**

ब्रह्म ने उत्तर दिया कि यह कार्य असंभव नहीं है, बल्कि यह कार्य उसकी शक्ति से संभव है। यह दर्शाता है कि ब्रह्म में अद्वितीय शक्ति है जो किसी भी कार्य को साकार कर सकती है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **वायु और ब्रह्म का संवाद:**

शंकराचार्य के अनुसार, वायु का यह प्रश्न यह दर्शाता है कि हम अपनी सीमित सोच से ब्रह्म की शक्तियों को समझने की कोशिश करते हैं। ब्रह्म का स्वरूप असीमित और सर्वशक्तिमान है, और जो कार्य हमें असंभव लगता है, वह ब्रह्म के लिए सहज है।

2. **ब्रह्म की शक्ति का प्रमाण:**

यहाँ शंकराचार्य यह बताते हैं कि ब्रह्म का स्वरूप इतना अति शक्तिशाली है कि कोई भी कार्य, चाहे वह कितना भी कठिन क्यों न हो, उसकी इच्छा से संभव है।

भाष्य:

1. **वायु और ब्रह्म के बीच संवाद:**

इस श्लोक में वायु द्वारा किए गए प्रश्न और ब्रह्म के उत्तर के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हम जब तक ब्रह्म के आंतरिक अनुभव को नहीं समझते, तब तक हमें उसकी शक्तियों का पूरा ज्ञान नहीं होता। यह संवाद हमें यह समझने में मदद करता है कि ब्रह्म का ज्ञान और अनुभव केवल साधना से संभव है।

2. **शक्ति का निराकार रूप:**

ब्रह्म का आकार निराकार और असीमित है, और वह किसी भी कार्य को अपनी शक्ति से संभव बना सकता है। यह श्लोक हमें यह समझाता है कि ब्रह्म का ज्ञान और उसका अनुभव हमारे लिए एक सीमित समझ से परे है।

समीक्षा:

1. **वायु का प्रतीकात्मक अर्थ:**

वायु को यहाँ एक प्रतीक के रूप में लिया गया है, जो शारीरिक और मानसिक गतिशीलता का प्रतिनिधित्व करती है। यह दर्शाता है कि जब तक हम ब्रह्म के सचेत रूप को नहीं समझते, तब तक हमें उसकी शक्ति का सही अनुमान नहीं हो पाता।

2. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म की शक्ति के बारे में समझने का प्रयास केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं किया जा सकता, बल्कि हमें अनुभव के माध्यम से इसका ज्ञान प्राप्त करना होता है।

सारांश:

इस श्लोक में वायु और ब्रह्म के संवाद को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वायु ने ब्रह्म से पूछा कि क्या यह कार्य संभव है, और ब्रह्म ने उत्तर दिया कि यह कार्य असंभव नहीं है। यह श्लोक ब्रह्म की शक्ति और उसकी अनंत क्षमता

को समझाने का प्रयास करता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं होता।

मन्त्र=३//८

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा ।
अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥

हाँ-हाँ
मैं ही मत्रिश्रावा प्रसिद्द वायु हूँ
कहा दर्प से जब
सृष्टि संसर्ग से तब |
भूलोक में वायु देव विचरण हैं करते
इतनी शक्ति भव्य लिए
उड़ा दे जो भी दिखे उसे अपना भार दिए |

शब्दार्थ:
1. **तद्** (तद्): वह, वह व्यक्ति। 2. **अभ्यद्रवत्तम्** (अभ्यद्रवत्तम्): उसने उस ओर बढ़कर, पास पहुंचकर। 3. **अभ्यवदत** (अभ्यवदत): उसने कहा, बोला। 4. **कोऽसीति** (कोऽसीति): तू कौन है? 5. **वायुर्वा** (वायुर्वा): वायु ने। 6. **अहमस्मि** (अहमस्मि): मैं हूँ। 7. **इति** (इति): इस प्रकार। 8. मातरिश्वा (मातरिश्वा): मातरिश्वा (वायु) का नाम है, जो अंतरिक्ष में फैली हुई वायु का प्रतिनिधित्व करता है। 9. अहमस्मीति (अहमस्मीति): "मैं हूँ" ऐसा कहा।

व्याख्या:

यह श्लोक वायु के अनुभव और उसकी पहचान को दर्शाता है। वायु ने जैसे ही ब्रह्म से पूछा कि वह कौन है, ब्रह्म ने उत्तर दिया, "मैं हूं," जिसका अर्थ है कि ब्रह्म अपनी असीमित शक्ति के साथ प्रत्येक रूप में है, यहां तक कि वायु में भी। यह संवाद यह सिखाता है कि ब्रह्म का साकार रूप हर तत्व में समाहित है और हर रूप में वही ब्रह्म प्रकट होता है।

1. **वायु का प्रश्न:**

वायु ने ब्रह्म से पूछा कि वह कौन है। यह प्रतीक है उस समय के ज्ञान की ओर, जब एक व्यक्ति या तत्व अपनी पहचान को जानने की कोशिश करता है।

2. **ब्रह्म का उत्तर:**

ब्रह्म का उत्तर कि "मैं हूँ" यह बताता है कि ब्रह्म न केवल निराकार है, बल्कि उसका अस्तित्व सभी रूपों में समाहित है। यहाँ वायु का रूप ब्रह्म की शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **वायु के प्रश्न का उत्तर:**

शंकराचार्य के अनुसार, यह संवाद ब्रह्म के असीम रूप को दर्शाता है। जब वायु ने "कोऽसीति" (तू कौन है?) पूछा, तब ब्रह्म ने उत्तर दिया, "अहमस्मीति," अर्थात मैं ही वायु हूं, मैं ही हर रूप में प्रकट हूं। यह उत्तर हमें ब्रह्म के असीम रूप का अनुभव कराता है।

2. **ब्रह्म का व्यक्तित्व:**

ब्रह्म का वास्तविक रूप निराकार है, लेकिन वह प्रत्येक तत्व में अपना अस्तित्व दर्शाता है। वायु को अपने रूप में देखने का अर्थ है ब्रह्म का हर रूप में व्याप्त होना।

भाष्य:

1. **वायु और ब्रह्म का एक रूप में मिलना:**

इस श्लोक में यह बताया गया है कि ब्रह्म न केवल निराकार रूप में है, बल्कि वह हर रूप में, यहां तक कि वायु में भी मौजूद है। इसका अर्थ है कि ब्रह्म का अस्तित्व किसी भी रूप में हो सकता है, जो हमारे संवेदनात्मक और बौद्धिक अनुभव से परे है।

2. **ब्रह्म के सार्वभौमिक रूप का प्रतीक:**

वायु का रूप ब्रह्म की व्यापकता को दर्शाता है। वायु निरंतर फैलती रहती है, जैसे ब्रह्म हर रूप में व्याप्त है, वह असीम और सर्वव्यापी है।

समीक्षा:

1. **सार्वभौमिकता और ब्रह्म का स्वरूप:**

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म हर रूप में व्याप्त है। जैसे वायु अनंत रूपों में प्रकट होती है, वैसे ही ब्रह्म हर रूप में अपनी उपस्थिति दर्शाता है।

2. **अनुभव की महत्वपूर्णता:**

वायु और ब्रह्म का संवाद यह दर्शाता है कि ब्रह्म का अनुभव हमें किसी विशेष रूप में, जैसे वायु, प्रकाश, या अन्य तत्वों में हो सकता है। यह श्लोक हमारी सीमित समझ को विस्तृत करता है और ब्रह्म के व्यापक रूप को दर्शाता है।

सारांश:

इस श्लोक में वायु ने ब्रह्म से पूछा कि वह कौन है, और ब्रह्म ने उत्तर दिया, "मैं हूँ," जो यह सिद्ध करता है कि ब्रह्म का अस्तित्व हर रूप में प्रकट होता है, और वही ब्रह्म हर तत्व, जैसे वायु, में व्याप्त है।

मन्त्र=३//९

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥९॥

एक तृण रख आपने जो आदेश दिया
न उड़ सका वायु के वेग से
प्रभु आपकी शक्ति रोके रहे जिसे
उड़ा सके कौन उसे
वायु तत्व का अर्थ क्या
आपके आगे किसी की सामर्थ्य क्या ||

शब्दार्थ:
1. **तस्मिन** (तस्मिन): उस (ब्रह्म में)। 2. **त्वयि** (त्वयि): तुम में। 3. **किं** (किं): क्या। 4. **वीर्यम्** (वीर्यम्): शक्ति, बल। 5. **इतिहास** (इतिहास): वह, यह, इस प्रकार। 6. **पीदं (पीदं):** लिया, संकलित किया। 7. **सर्वम्** (सर्वम्): सभी, सम्पूर्ण। 8. **आददीय** (आददीय): लिया, प्राप्त किया। 9. **यदिदं** (यदिदं): जो यह। 10. **पृथिव्याम्** (पृथिव्याम्): पृथ्वी में।

व्याख्या:
यह श्लोक ब्रह्म के और वायु के बीच संवाद को दर्शाता है, जहाँ ब्रह्म वायु से पूछता है कि तुम में इतनी शक्ति कहां से आई? तुमने कौन सी शक्ति प्राप्त की है, जो पृथ्वी में व्याप्त है? यह संवाद हमें यह बताता है कि ब्रह्म का बल अनंत है, और वह किसी भी रूप में प्रकट हो सकता है। यहाँ पर ब्रह्म की शक्ति को पृथ्वी में व्याप्त रूप में देखा जाता है, और वायु का यह संवाद ब्रह्म की शक्ति को पहचानने का एक तरीका है।

1. **शक्ति का स्रोत:**
ब्रह्म के प्रति वायु की सवाल यह संकेत करता है कि वायु भी ब्रह्म से ही शक्ति प्राप्त करती है। वायु के रूप में वह शक्ति अदृश्य और अपार होती है, जो पृथ्वी पर प्रकट होती है।
2. **वह शक्ति, जो पृथ्वी में व्याप्त है:**
यह श्लोक हमें यह समझाता है कि ब्रह्म की शक्ति पूरी पृथ्वी में और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। वायु का अस्तित्व भी उसी शक्ति का प्रतीक है, जो ब्रह्म के रूप में है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
1. **शक्ति का संदर्भ:**
शंकराचार्य के अनुसार, यह संवाद यह बताता है कि वायु और पृथ्वी दोनों ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं और ब्रह्म की शक्ति से ही सभी कृतियाँ संभव हैं। यहाँ पर ब्रह्म का स्वरूप निर्गुण और सर्वव्यापी रूप में देखा जा सकता है।
2. **सार्वभौमिकता और शक्ति:**
शंकराचार्य बताते हैं कि वायु की शक्ति या उसकी उपस्थिति ब्रह्म की शक्ति से ही है, जो समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इस प्रकार, ब्रह्म की शक्ति को समझने का तरीका यह है कि वह हर रूप में प्रकट होती है।

भाष्य:
1. **वायु और ब्रह्म का संबंध:**
यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि जो शक्ति हमें वायु के रूप में दिखाई देती है, वह ब्रह्म की शक्ति से ही उत्पन्न हुई है। वायु का अस्तित्व ब्रह्म के स्वरूप का ही एक रूप है, और उसकी शक्ति अनंत और निराकार है।
2. **पृथ्वी में व्याप्त ब्रह्म:**

यह श्लोक यह दर्शाता है कि ब्रह्म की शक्ति केवल ब्रह्माण्ड में नहीं, बल्कि पृथ्वी पर भी व्याप्त है। यह ब्रह्म की सर्वव्यापकता का प्रमाण है, जो सभी रूपों में विद्यमान है।

समीक्षा:

1. **सार्वभौमिक रूप में ब्रह्म:**

इस श्लोक में ब्रह्म की शक्ति को पृथ्वी पर व्याप्त रूप में बताया गया है। यह श्लोक हमें ब्रह्म के सभी रूपों और उसकी सार्वभौमिक उपस्थिति का अहसास कराता है।

2. **शक्ति का अदृश्य रूप:**

वायु और पृथ्वी में व्याप्त ब्रह्म की शक्ति का यह उदाहरण यह बताता है कि ब्रह्म का अस्तित्व अदृश्य होते हुए भी हर रूप में प्रकट हो सकता है।

सारांश:

इस श्लोक में ब्रह्म वायु से पूछता है कि तुम्हारे पास जो शक्ति है, वह कहां से आई? यह संवाद ब्रह्म की असीम और सर्वव्यापी शक्ति को दर्शाता है, जो पृथ्वी में भी व्याप्त है। ब्रह्म का अस्तित्व हर रूप में और हर तत्व में प्रकट होता है, और वह शक्तियां अदृश्य होते हुए भी सभी रूपों में व्याप्त रहती हैं।

मन्त्र=३//१०

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न ।
शशाकादतुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१०॥

हे देव !
कौन है अतिशय अप्रतिम शक्तिमय
बुद्धि शक्ति के गर्व से गर्वान्वित वायु देव तो नही?
ज्ञात कर दूर करें व्यथा यहीं |

शब्दार्थ:

1. **तस्मै** (तस्मै): उसे (वायु को)। 2. **तृणं** (तृणं): घास, तिनका। 3. **निदधावेत** (निदधावेत): रखे, डाले। 4. **तद्** (तद्): वह। 5. **आदत्स्वेति** (आदत्स्वेति): वह फिर लिया। 6. **तदुपप्रेयाय** (तदुपप्रेयाय): वह उसके पास गया, उसके पास पहुंचा। 7. **सर्वजवेन** (सर्वजवेन): पूरी गति से। 8. **तन्न** (तन्न): वह (घास)। 9. **शशाकादतुं** (शशाकादतुं): उसे काटने के लिए, इसे काटने में। 10. **स** (स): वह (वायु)। 11. **तत्** (तत्): वह। 12. **एव** (एव): बस, निश्चित रूप से। 13. **निववृते** (निववृते): उसने छोड़ दिया। 14. **नैतदशकं** (नैतदशकं): यह संभव नहीं है, यह हो सकता नहीं है। 15. **विज्ञातुं** (विज्ञातुं): जानने के लिए। 16. **यदेतद्यक्षमिति** (यदेतद्यक्षमिति): यह जिसे वह जानता है, यह वह नहीं कर सकता।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म के साथ वायु के अनुभव के बारे में है। इसमें वायु ने घास को अपने पास रखा और उसे अपनी गति से लिया, लेकिन वह इसे काट नहीं पाया क्योंकि उसे यह पता नहीं था कि इसे कैसे किया जाए। यह श्लोक यह प्रतीक है कि ब्रह्म या वायु को किसी कार्य को करने के लिए उसकी पूरी शक्ति या ज्ञान की आवश्यकता होती है। यहां ब्रह्म के ज्ञान की कमी और शक्तिहीनता का संदर्भ है।

1. वायु की गति:

वायु का पूरी गति से काम करना यह दर्शाता है कि ब्रह्म की शक्ति भी प्रकट होती है, लेकिन उसे सही दिशा और ज्ञान की आवश्यकता होती है।

2. ज्ञान का अभाव:

वायु, जो पूरी गति से कार्य करने में सक्षम थी, फिर भी बिना सही ज्ञान के उस कार्य को पूरा नहीं कर पाई। यह संकेत करता है कि ब्रह्म का ज्ञान ही उसकी शक्ति और कार्य की सफलता का कारण है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. वायु की शक्ति का प्रमाण:

शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक यह बताता है कि वायु का बल पूरी गति में है, लेकिन ज्ञान के अभाव में वह कार्य को नहीं कर **पाती।** यह ज्ञान ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को जानने की आवश्यकता को दिखाता है।

2. ब्रह्म के ज्ञान की अहमियत:

यह श्लोक हमें यह समझाता है कि ब्रह्म की शक्ति केवल उसकी असीमित ऊर्जा में नहीं है, बल्कि उसकी पूरी और सही समझ में भी है।

भाष्य:

1. वायु और ज्ञान का संबंध:

यह श्लोक यह दिखाता है कि ज्ञान के बिना कोई भी शक्ति अपना कार्य पूरी तरह से नहीं कर सकती। भले ही वायु के पास पूरी शक्ति हो, लेकिन उसे सही दिशा और ज्ञान की आवश्यकता थी, जो वह प्राप्त नहीं कर पाई।

2. ज्ञान की महत्वता:

ब्रह्म के लिए भी ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। बिना सही ज्ञान के, कोई भी शक्ति अधूरी और असफल हो सकती है।

समीक्षा:

1. शक्ति और ज्ञान का संतुलन:

इस श्लोक में शक्ति और ज्ञान दोनों की अहमियत को दर्शाया गया है। यहां पर वायु की गति और ज्ञान की कमी का संदर्भ हमें यह बताता है कि केवल शक्ति ही नहीं, बल्कि सही ज्ञान भी आवश्यक है।

2. वायु और ब्रह्म की शक्ति:

वायु की शक्ति ब्रह्म के रूप में प्रतीकित की गई है, जो एक अदृश्य शक्ति है, लेकिन उसे कार्य में सफलता पाने के लिए सही ज्ञान और दिशा की आवश्यकता है।

सारांश:

इस श्लोक में वायु की पूरी गति से कार्य करने का संदर्भ दिया गया है, लेकिन उसे सही ज्ञान की कमी के कारण सफलता नहीं मिली। यह श्लोक ब्रह्म की शक्ति को समझने और सही दिशा में काम करने के महत्व को दर्शाता है।

मन्त्र=३//११

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति ।
तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥११॥

सब देवगण मिल पूछ रहे
इंद्र देव से
कौन है महा महिम?
दिव्य यक्ष सन्मुख

इंद्र त्वरित कहें
ब्रह्म तो निमिष मात्र में तिरोहित हुए|

शब्दार्थ:

1. **अथ** (अथ): फिर, अब। 2. **इन्द्रम्** (इन्द्रम्): इन्द्र, देवों के राजा। 3. **अब्रुवत्** (अब्रुवत्): उसने कहा। 4. **मघवन्** (मघवन्): मघा का अर्थ है वह जो श्रेष्ठ है, यहाँ इन्द्र के लिए। 5. **एतद्** (एतद्): यह। 6. **विजानीहि** (विजानीहि): जानो। 7. **किम्** (किम्): क्या। 8. **एतद्** (एतद्): यह। 9. **अक्षमिति** (अक्षमिति): क्या यह संभव है, क्या यह किया जा सकता है। 10. **तथेति** (तथेति): ऐसा ही। 11. **तदभ्यद्रवत्त** (तदभ्यद्रवत्त): फिर वह दौड़ा, वह सब कुछ हो गया। 12. **तस्मात्** (तस्मात्): उस कारण से। 13. **तिरोदधे** (तिरोदधे): गायब हो गया, वह चला गया।

व्याख्या:

इस श्लोक में इन्द्र और वायु के बीच संवाद का वर्णन है। इन्द्र, जो देवों के राजा हैं, वायु से पूछते हैं कि क्या यह कार्य संभव है, क्या वायु यह कार्य कर सकती है? वायु का उत्तर सुनते ही वह गायब हो जाता है।

यह श्लोक दिखाता है कि शक्ति, चाहे वह वायु के रूप में हो या किसी अन्य रूप में, ब्रह्म के हाथ में होती है। इन्द्र के प्रश्न का उत्तर देने के बाद वायु तुरंत गायब हो जाती है, जो ब्रह्म के अदृश्य और अपार रूप को संकेत करता है।

1. **इन्द्र का प्रश्न:**

इन्द्र का प्रश्न यह दर्शाता है कि देवताओं के पास भी पूर्ण ज्ञान नहीं है और वे भी ब्रह्म की शक्ति के बारे में जानने के लिए उत्सुक हैं।

2. **वायु का उत्तर:**

वायु का उत्तर देने के बाद गायब होना यह दर्शाता है कि ब्रह्म की शक्ति अप्रकट और अदृश्य होती है, जो अपनी इच्छा से प्रकट होती है और अंत में गायब हो जाती है।

शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):

1. **इन्द्र का सवाल:**

शंकराचार्य के अनुसार, इन्द्र का सवाल यह दिखाता है कि वह भी ब्रह्म की शक्ति को जानने के लिए उत्सुक हैं। इन्द्र, जो देवताओं के राजा होते हुए भी ज्ञान के कुछ पहलुओं को समझने में असमर्थ होते हैं, ब्रह्म के रहस्यों को जानने की इच्छा रखते हैं।

2. **वायु की अप्रकटता:**

वायु का अचानक गायब हो जाना यह प्रमाण है कि ब्रह्म का स्वरूप परम और अदृश्य है। यह ब्रह्म की शक्ति को दिखाने वाला एक उदाहरण है, जो हर जगह व्याप्त होते हुए भी अपनी इच्छा से प्रकट और अप्रकट हो सकती है।

भाष्य:

1. **इन्द्र और वायु का संवाद:**

इस श्लोक में इन्द्र का प्रश्न यह दिखाता है कि देवताओं के पास भी सर्वशक्तिमान ब्रह्म के रहस्यों को पूरी तरह से समझने की क्षमता नहीं होती। वह वायु से पूछते हैं कि क्या वह इसे समझ सकती है। वायु का जवाब देने के बाद गायब होना यह संकेत करता है कि ब्रह्म की शक्ति पूरी तरह से अप्रकट है।

2. **अदृश्यता और प्रकटता:**

यह श्लोक ब्रह्म की अप्रकटता को दर्शाता है। वायु की स्थिति यह दिखाती है कि ब्रह्म का अस्तित्व हमें अदृश्य रूप में ही समझ में आता है, और वह अपनी इच्छा से ही प्रकट और गायब हो सकता है।

समीक्षा:

1. **ज्ञान और शक्ति का अदृश्य स्वरूप:**

इस श्लोक में ब्रह्म की अदृश्य शक्ति को दर्शाया गया है। यहां इन्द्र और वायु के संवाद से यह समझ आता है कि ब्रह्म की शक्ति हमेशा प्रकट नहीं होती, बल्कि उसकी प्रकृति ऐसी होती है कि वह कभी भी गायब हो सकती है।

2. **वायु की अप्रकटता:**

वायु का अचानक गायब हो जाना ब्रह्म के अदृश्य रूप को प्रतीकित करता है। यह दर्शाता है कि ब्रह्म की शक्ति हर जगह व्याप्त होती है, लेकिन उसे समझने के लिए सही ज्ञान की आवश्यकता है।

सारांश:

इस श्लोक में इन्द्र और वायु के संवाद के माध्यम से ब्रह्म की अदृश्यता और प्रकटता का रूप दिखाया गया है। वायु का गायब होना यह दर्शाता है कि ब्रह्म का अस्तित्व और शक्ति हमेशा प्रकट नहीं होती, और हमें उसे समझने के लिए गहरे ज्ञान की आवश्यकता है।

मन्त्र=३//१२

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाँ।
हैमवतीं ताँहोवाच किमेतद्यक्षमिति ॥१२॥

यक्ष के स्थान इंद्र हुए स्थित
उमा रूपा ब्रह्म विद्या
देख हुए अचंभित
कहें उमरुपा ब्रह्म दिव्य यक्ष से
सादर विनीत नही कोई सर्वज्ञ आपसा ||

शब्दार्थ:

1. **स** (स): वह। 2. **तस्मिन्नेव** (तस्मिन्नेव): उसी स्थान पर। 3. **आकाशे** (आकाशे): आकाश में, ब्रह्म के साथ संबंधित स्थान। 4. **स्त्रियम्** (स्त्रियम्): एक स्त्री। 5. **आजगाम** (आजगाम): आई, प्रकट हुई। 6. **बहुशोभमानाम** (बहुशोभमानाम): अत्यधिक शोभायमान, बहुत सुंदर। 7. **उमाम** (उमाम): उमा, पार्वती, देवी। 8. **हेमवतीं** (हेमवतीं): स्वर्णरुपी, स्वर्णमणिमयी। 9. **तां** (तां): उसे। 10. **होवाच** (होवाच): उसने कहा। 11. **किमेतद्यक्षमिति** (किमेतद्यक्षमिति): क्या यह कार्य सम्भव है, क्या इसे किया जा सकता है?

व्याख्या:

इस श्लोक में आकाश में एक दिव्य स्त्री का प्रकट होना दर्शाया गया है। वह स्त्री अत्यधिक सुंदर और स्वर्णमयी थी, और उसे देखकर यह पूछा गया कि क्या यह कार्य संभव है। यह श्लोक ब्रह्म की शक्ति और उसकी अप्रकटता को और अधिक स्पष्ट करता है। यहां वह स्त्री पार्वती (उमा) के रूप में प्रतीकित हो सकती है, जो एक दिव्य रूप में प्रकट होती हैं।

1. **स्वर्णमयी स्त्री का प्रकट होना:**

स्वर्णमयी स्त्री का प्रकट होना एक दिव्य शक्तियों के संकेत के रूप में लिया जा सकता है। यह यह बताता है कि ब्रह्म के साथ संबंधित शक्तियां भी दिव्य और अत्यधिक आकर्षक होती हैं।

2. **प्रश्न का उठना:**
स्त्री का यह प्रश्न कि "क्या यह कार्य सम्भव है?" ब्रह्म की शक्ति के प्रति जिज्ञासा को दर्शाता है। यह संकेत करता है कि इस कार्य को करने के लिए सही ज्ञान और शक्ति का होना आवश्यक है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

1. **स्त्री के रूप में देवी का प्रकट होना:**
शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक ब्रह्म की शक्ति को प्रकट करने वाली दिव्य स्त्री का रूप है। देवी पार्वती, जो अपने दिव्य रूप में आकाश में प्रकट होती हैं, यह दर्शाती हैं कि ब्रह्म की शक्ति अपनी इच्छा से किसी भी रूप में प्रकट हो सकती है।

2. **अध्यात्मिक दृष्टिकोण:**
यहां यह भी प्रतीत होता है कि देवी का रूप एक महान शक्ति का प्रतीक है, और वह शक्ति ब्रह्म से जुड़ी हुई है, जो कार्यों को संभव और असंभव बनाने में सक्षम है।

भाष्य:

1. स्वर्णमयी स्त्री और ब्रह्म की शक्ति:
स्वर्णमयी स्त्री का प्रकट होना एक प्रतीक है, जो यह दर्शाता है कि ब्रह्म की शक्ति न केवल अदृश्य है, बल्कि उसे विभिन्न रूपों में प्रकट किया जा सकता है। यह रूप उस शक्ति का प्रतिबिंब है जो ब्रह्म के भीतर है।

2. **दिव्य रूप में शक्तियों का प्रकट होना:**
इस श्लोक में जिस तरह से दिव्य स्त्री का प्रकट होना दिखाया गया है, वह यह संकेत करता है कि ब्रह्म की शक्ति कभी भी किसी भी रूप में प्रकट हो

सकती है। यह हमें अपने आस-पास के दिव्य रूपों को समझने और उनका सम्मान करने की आवश्यकता की ओर इशारा करता है।

समीक्षा:

1. **ब्रह्म की अप्रकटता और शक्ति का प्रकट होना:**

श्लोक में दी गई कहानी ब्रह्म की शक्ति के अप्रकट और प्रकट रूपों का संकेत देती है। यहां स्त्री के रूप में शक्तियों का प्रकट होना और उस पर सवाल उठाना यह दर्शाता है कि ब्रह्म की शक्ति को पूरी तरह से समझने के लिए सही दृष्टिकोण और ज्ञान आवश्यक है।

2. **पार्वती और ब्रह्म का सम्बन्ध:**

यह श्लोक पार्वती के रूप में ब्रह्म की शक्ति को एक जीवंत रूप में दर्शाता है, जो अपनी शक्ति के द्वारा हर कार्य को संभव बनाती है।

सारांश:

इस श्लोक में स्वर्णमयी और अत्यंत सुंदर स्त्री का प्रकट होना, जो ब्रह्म की शक्ति और दिव्य रूप का प्रतीक है, हमें यह सिखाता है कि ब्रह्म की शक्ति को समझने और महसूस करने के लिए सही दृष्टिकोण और ज्ञान की आवश्यकता होती है।

चतुर्थ खंड

मन्त्र =४//१

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये ।
महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥

हे दिव्य यक्ष !
इंद्र ने जब पाया उत्तर
उमा शक्ति ब्रह्म से,
यक्ष तो हैं परब्रह्म स्वयं,
दानव-देव युद्ध में जब हुआ ता अभिमान देवों को
रूप धरा था
परम ब्रह्म प्रभु ने
तब दिव्य यक्ष का मानमर्दन को |

शब्दार्थ:

1. **सा** (सा): वह (स्त्री)। 2. **ब्रह्मेति** (ब्रह्मेति): वह ब्रह्म है। 3. **होवाच** (होवाच): उसने कहा। 4. **ब्रह्मणो** (ब्रह्मणो): ब्रह्म के (संबंधित)। 5. **वा** (वा): या। 6. **एतद्विजये** (एतद्विजये): इस विजय (विजय का कार्य)। 7. **महीयध्वमिति** (महीयध्वमिति): आप महान बनो, आपको सम्मान मिले। 8. **ततो** (ततो): तब। 9. **हैव** (हैव): उसी समय। 10. **विदाञ्चकार** (विदाञ्चकार): उसने किया, उसने जान लिया। 11. **ब्रह्मेति** (ब्रह्मेति): यह ब्रह्म है।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म की विजय और उसकी अद्वितीयता की बात करता है। स्वर्णमयी स्त्री (जो शायद देवी उमा या पार्वती के रूप में प्रतीकित हो सकती है) यह बताती है कि जो कुछ भी हो रहा है, वह ब्रह्म की विजय है और इसे समझने के लिए उसे परम ज्ञान प्राप्त हुआ। यह ज्ञान, ब्रह्म के अद्वितीय और सर्वोच्च स्वरूप को जानने की एक प्रक्रिया को दर्शाता है।
स्वर्णमयी स्त्री का यह कथन हमें यह समझाता है कि ब्रह्म की शक्ति से जुड़े सभी कार्य उसे ब्रह्म की ही विजय के रूप में देखे जाते हैं। इसीलिए, वह यह कहती है कि सभी को ब्रह्म के कार्यों में सम्मान और महानता प्राप्त करनी चाहिए।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक में ब्रह्म की विजय की बात की जा रही है। ब्रह्म की विजय को समझने के लिए उसे भलीभांति जानना आवश्यक है, और जो इसे जानता है, वही असल में ब्रह्म के कार्यों का साक्षात्कार करता है। यह श्लोक ब्रह्म के कार्यों की अप्रकटता और उसकी विजय का प्रतीक है।

भाष्य:
1. ब्रह्म की विजय:
श्लोक का संदेश यह है कि हर कार्य जो ब्रह्म के साथ संबंधित है, वह ब्रह्म की विजय का प्रतीक होता है। ब्रह्म की विजय का वास्तविक अर्थ यह है कि वह सर्वोच्च है और उसकी शक्ति अनंत है, जो किसी भी रूप में प्रकट हो सकती है।
2. **स्वर्णमयी स्त्री का उद्घोष:**

स्वर्णमयी स्त्री का यह उद्घोष कि "यह ब्रह्म है", यह दर्शाता है कि जो कुछ भी हमारे आस-पास घटित हो रहा है, वह ब्रह्म की शक्ति और उसकी विजय का ही परिणाम है।

समीक्षा:

1**. ब्रह्म की अपरिहार्यता:**

इस श्लोक में यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म की विजय और उसकी शक्ति अपरिहार्य हैं। जो इसे समझता है, वही ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को पहचानता है।

2. समानता और श्रद्धा:

यह श्लोक यह भी सिखाता है कि हमें ब्रह्म के कार्यों के प्रति सम्मान और श्रद्धा रखनी चाहिए, क्योंकि वे परम सत्य और अजेय होते हैं।

सारांश:

इस श्लोक में ब्रह्म की विजय और उसकी अपरिहार्य शक्ति की बात की जा रही है। स्वर्णमयी स्त्री ने यह स्पष्ट किया कि सभी कार्य ब्रह्म की विजय का रूप हैं, और हमें इसका ज्ञान प्राप्त कर सम्मानित होना चाहिए।

<u>मन्त्र =४//२</u>

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ।
ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥२॥

हे विश्व रचियता !

आपके प्रभाव को पहचान

इंद्र, अग्नि, वायुदेव ने,
नमन किया
आप ही विश्व-प्रणम्य हो,
आप ही तत्व मर्मज्ञ हो,
आप ही सर्वज्ञ हो ||

शब्दार्थ:

1. **तस्माद्वा** (तस्माद्वा): इसलिए, इस कारण से। 2. **एते** (एते): ये। 3. **देवा** (देवा): देवता। 4. **अतितरामिव** (अतितरामिव): अन्य देवताओं से परे, सर्वोच्च। 5. **अन्यान** (अन्यान): अन्य। 6. **दिग्निर्वायुरिन्द्रस्ते** (अग्निर्वायुरिन्द्रस्ते): ये देवता अग्नि, वायु, और इन्द्र हैं। 7. **ह्येन** (ह्येन): उसी द्वारा। 8. अन्नेदिष्ठं (अन्नेदिष्ठं): जो भोजन का स्वामी है, जिसने भोजन को नियंत्रित किया। 9. **पस्पर्शुस्ते** (पस्पर्शुस्ते): उन्होंने उसे छुआ। 10. **ह्येन** (ह्येन): उसी के द्वारा। 11. **प्रथमो** (प्रथमो): पहला। 12. **विदाञ्चकार** (विदाञ्चकार): उसने जाना, उसने समझा। 13. **ब्रह्मेति** (ब्रह्मेति): यह ब्रह्म है।

व्याख्या:

इस श्लोक में ब्रह्म के अद्वितीय रूप और उसकी सर्वोच्चता को दर्शाया गया है। यहाँ यह बताया जा रहा है कि देवता, जैसे अग्नि, वायु और इन्द्र, जो शक्तिशाली हैं, वे ब्रह्म की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हैं। वे ब्रह्म के तत्व से परे नहीं जा सकते, क्योंकि वह परम सत्य है।

1. अग्नि, वायु और इन्द्र का ब्रह्म से सम्बन्ध:

इन तीनों देवताओं का उल्लेख इस बात को प्रकट करता है कि ब्रह्म के प्रभाव से ही हर शक्ति और तत्व का अस्तित्व है। ये देवता केवल ब्रह्म की शक्तियों के प्रतिनिधि हैं, और इन्हें भी ब्रह्म की महिमा का एहसास होता है।

2. ब्रह्म का तत्व:

यह श्लोक यह भी बताता है कि ब्रह्म ने स्वयं को भोजन के रूप में प्रकट किया, और देवताओं ने उसे अनुभव किया। इससे यह प्रमाणित होता है कि ब्रह्म न केवल अदृश्य है, बल्कि वह जीवन के हर रूप में विद्यमान है, जैसे भोजन।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक में ब्रह्म की सर्वोच्चता को दिखाने के लिए देवताओं का उदाहरण दिया गया है। अग्नि, वायु, और इन्द्र जैसे प्रमुख देवताओं ने ब्रह्म को जाना और उसे समझा। इस श्लोक के माध्यम से यह सिद्ध किया जाता है कि ब्रह्म ही जीवन का वास्तविक स्रोत है, और सभी देवता ब्रह्म के तत्व से उत्पन्न होते हैं।

भाष्य:

1. ब्रह्म की सर्वव्यापकता:

इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म केवल एक अदृश्य शक्ति नहीं है, बल्कि वह प्रत्येक तत्व में समाहित है। देवता, जो अन्यथा अजेय माने जाते हैं, भी ब्रह्म के प्रभाव से बाहर नहीं हैं।

2. **ब्रह्म के रूप में भोजन:**

इस श्लोक में ब्रह्म का रूप अन्न के रूप में दिखाया गया है, जो जीवन का आधार है। यह दर्शाता है कि ब्रह्म हमारे जीवन के प्रत्येक पहलु में अस्तित्वमान है, चाहे वह भोजन हो या कोई अन्य जीवंत या निर्जीव तत्व।

समीक्षा:

1. देवताओं का ब्रह्म से सम्बंध:

यह श्लोक इस तथ्य को बल देता है कि चाहे जो भी देवता हो, वे ब्रह्म के अधीन होते हैं और उसी से उत्पन्न होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म ही सभी शक्तियों और रूपों का वास्तविक स्रोत है।

2. ब्रह्म का अद्वितीय और सर्वव्यापी रूप:

ब्रह्म का जो रूप इस श्लोक में दर्शाया गया है, वह यह बताता है कि ब्रह्म किसी विशेष रूप में सीमित नहीं है, बल्कि वह हर रूप में प्रकट हो सकता है। चाहे वह भोजन हो या देवता, ब्रह्म हर जगह विद्यमान है।

सारांश:

इस श्लोक में यह बताया गया है कि ब्रह्म की सर्वव्यापिता और उसकी सर्वोच्चता को न केवल मानव, बल्कि देवताओं ने भी पहचाना है। वे सभी ब्रह्म के तत्व से उत्पन्न होते हैं और उसी से उनका अस्तित्व जुड़ा हुआ है।

मन्त्र=४//३

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्ठं ।
परस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥

हे परमेश्वर !
ज्ञात हुई जब इंद्र को
आपकी सर्वज्ञता
अनुपम भक्तवत्सल प्रभु

आपने इंद्र को दिया श्रेष्ठता का आसन,
सिद्ध हुआ आप ही हो
सच्चिदानंद अगोचर
साक्षात् परम ब्रह्म ||

शब्दार्थ:

1. **तस्माद्वा** (तस्माद्वा): इस कारण से, इसलिए। 2. **इन्द्र** (इन्द्र): इन्द्र (देवता, आकाश और वर्षा के देवता)। 3. **अतितरामिव** (अतितरामिव): अन्य देवताओं से परे, सर्वोच्च। 4. **अन्यान** (अन्यान): अन्य। 5. **देवांस** (देवान्स): देवताओं को। 6. **ह्येन** (ह्येन): उसी द्वारा। 7. **अन्नेदिष्ठं** (अन्नेदिष्ठं): जो भोजन का स्वामी है। 8. **पस्पर्श** (पस्पर्श): उसने छुआ। 9. **स** (स): वह। 10. **ह्येन** (ह्येन): उसी द्वारा। 11. **प्रथमो** (प्रथमो): पहला। 12. **विदाञ्चकार** (विदाञ्चकार): उसने जाना, उसने समझा। 13. **ब्रह्मेति** (ब्रह्मेति): यह ब्रह्म है।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म की सर्वोच्चता को और स्पष्ट करता है, जो देवताओं से भी परे है। यहाँ इन्द्र (जो देवताओं में प्रमुख हैं) का उल्लेख किया गया है, यह दर्शाने के लिए कि वे भी ब्रह्म से परे नहीं हैं। इन्द्र ने ब्रह्म को छुआ, जो अन्न का स्वामी है, और उसी के द्वारा पहले ज्ञानी ने इसे ब्रह्म के रूप में पहचाना। श्लोक यह भी बताता है कि ब्रह्म एक अदृश्य, अप्रकट शक्ति है, जो सब कुछ नियंत्रित करती है, और यह किसी एक रूप में नहीं बल्कि हर रूप में विद्यमान है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

शंकराचार्य के अनुसार, इन्द्र जैसे प्रमुख देवता भी ब्रह्म की सत्ता के प्रति अपने समर्पण को स्वीकार करते हैं। वे केवल ब्रह्म के अंश हैं और उसका कार्य करते हैं। शंकराचार्य इस श्लोक में यह बताते हैं कि ब्रह्म केवल वेदों में ही नहीं, बल्कि ब्रह्मा, विष्णु, और महेश जैसे देवताओं के माध्यम से भी प्रकट होता है। इन्द्र का उदाहरण इस बात को सिद्ध करता है कि सभी देवता ब्रह्म के अधीन हैं।

भाष्य:

1. इन्द्र का ब्रह्म से संबंध:

इन्द्र, जो आकाश और वर्षा के देवता हैं, ने ब्रह्म को छुआ और पहचाना। यह दर्शाता है कि हर देवता ब्रह्म से जुड़ा हुआ है, और ब्रह्म के बिना कोई शक्ति अस्तित्व में नहीं आ सकती।

2. **ब्रह्म की अदृश्यता और सर्वव्यापिता:**

इस श्लोक में ब्रह्म का स्वरूप अदृश्य और सार्वभौमिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म न केवल देवताओं, बल्कि हर जीवन और रूप में प्रकट होता है।

समीक्षा:

1. देवताओं का ब्रह्म से जुड़ा होना:

श्लोक यह सिद्ध करता है कि देवता ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं और वही उनकी शक्ति और अस्तित्व का स्रोत है। यह ब्रह्म की सार्वभौमिकता को दर्शाता है।

2. ब्रह्म के प्रति समर्पण:

इन्द्र जैसे प्रमुख देवताओं द्वारा ब्रह्म को जानना और स्वीकार करना यह दर्शाता है कि ब्रह्म को जानना और समझना किसी भी देवता के लिए सर्वोत्तम लक्ष्य है।

सारांश:
इस श्लोक में ब्रह्म की अद्वितीयता और उसकी सर्वोच्चता को दर्शाया गया है। इन्द्र जैसे प्रमुख देवता भी ब्रह्म से परे नहीं हैं और वह ब्रह्म को पहचानते हैं। यह श्लोक ब्रह्म की सार्वभौमिकता और हर रूप में उसकी उपस्थिति को स्पष्ट करता है।

मन्त्र=४//४

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदाइतीन् ।
न्यमीमिषवदा इत्यधिदैवतम् ॥४॥

हे स्वामी !
अधिदैविक उपदेश
का मर्म ज्ञात करावें,
साक्षात् दर्शन की उत्कट इच्छा है,
आप परम ब्रह्म
आपके दर्शन बिन
मन व्याकुल है,
अति शीघ्र दर्शन दें |

शब्दार्थ:
1. **तस्यैष** (तस्यैष): इसका आदेश। 2. **आदेशो** (आदेश): आदेश। 3. **यत्** (यत्): जो। 4. **एतद्** (एतद्): यह। 5. **विद्युत्** (विद्युत्): विद्युत्, बिजली। 6. **व्यद्युतदाइतीन्** (व्यद्युतदाइतीन्): जैसे बिजली की कड़कन। 7.

न्यमीमिषवदा (न्यमीमिषवदा): इनसे एकदम अलग (आधिकारिक रूप से इतर)। 8. **इति** (इति): इस प्रकार। 9. **अधिदैवतम्** (अधिदैवतम्): यह देवता या दिव्य सत्ता को दर्शाता है।

व्याख्या:
यह श्लोक ब्रह्मा की सर्वोच्चता और उसकी दिव्य सत्ता को स्पष्ट करता है। यहाँ विद्युत् के कड़कने को एक उदाहरण के रूप में लिया गया है। विद्युत् की कड़कन के समान, इस आदेश का भी कोई स्पष्ट और बोधगम्य रूप नहीं होता, यह एक दिव्य आदेश है जो अदृश्य, परंतु शक्तिशाली रूप में कार्य करता है।

विद्युत् का उदाहरण:
विद्युत् का कड़कना अचानक और अप्रत्याशित होता है, उसी तरह से यह आदेश भी अप्रत्याशित और सर्वोच्च है। इसे देवताओं से अलग और उच्च माना गया है।

अधिदैवतम:
यह शब्द ब्रह्म की सर्वोच्च और दिव्य सत्ता को दर्शाता है, जो इस आदेश का स्रोत है। यह आदेश किसी साधारण शक्ति का नहीं, बल्कि एक उच्च और दिव्य सत्ता का आदेश है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक में ब्रह्म की अद्वितीयता को दर्शाया गया है, जहाँ अन्य देवताओं से परे एक उच्च सत्ता का आदेश होता है, जो ब्रह्म द्वारा नियंत्रित है। विद्युत् का कड़कना इस आदेश के प्रतीक रूप में लिया गया है, जो ब्रह्म के प्रकट होने का संकेत है।

भाष्य:

1. विद्युत् का संकेत:

विद्युत् का कड़कना यह दर्शाता है कि ब्रह्म के आदेश का कोई पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। यह अप्रत्याशित और अचानक होता है, जैसे ब्रह्म का अदृश्य रूप प्रकट होता है।

2. **अधिदैवतम का महत्व:**

यह शब्द ब्रह्म के सर्वोच्च रूप को दर्शाता है, और इसका संबंध उन शक्तियों से है जो केवल दिव्य सत्ता से उत्पन्न होती हैं।

समीक्षा:

1. शक्ति की अदृश्यता:

विद्युत् के कड़कने के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म की शक्ति अदृश्य और अप्रकट है, लेकिन उसके प्रभाव को महसूस किया जा सकता है।

2. दिव्य आदेश:

यह श्लोक ब्रह्म के आदेश को एक दिव्य और सर्वोच्च आदेश के रूप में प्रस्तुत करता है, जो किसी अन्य शक्ति से परे है।

सारांश:

यह श्लोक ब्रह्म की अद्वितीय दिव्य सत्ता को प्रदर्शित करता है। विद्युत् के कड़कने की तरह इसका आदेश अप्रत्याशित और शक्तिशाली है। यह आदेश ब्रह्म से उत्पन्न होता है, जो सभी शक्तियों का स्रोत है।

मन्त्र=४//५

अथाध्यात्मं यद्देतद्गच्छतीव च मनोऽनेन ।
चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णँ सङ्कल्पः ॥५॥

हे नाथ !
मन अति चपल
सन्निकट रहता ब्रह्म के
साकार हो या निराकार
अतिशय यह आपमें निमग्न रहे
प्रेम में व्याकुल रहे
आपका साक्षात्कार हो
यही अभिलाषा आकुल रहे |

शब्दार्थ:
1. **अथ** (अथ): फिर, अब। 2. **आध्यात्मं** (आध्यात्मं): आत्मा से संबंधित, या आत्मिक। 3. **यत्** (यत्): जो। 4. **एतद्** (एतद्): यह। 5. **गच्छति** (गच्छति): जाता है, पहुंचता है। 6. **ईव** (ईव): जैसे। 7. **च** (च): और। 8. **मनो** (मनो): मन। 9. **अन्येन** (अन्येन): इसके द्वारा। 10. **चैतत्** (चैतत्): यह चेतना। 11. **उपस्मरत्य** (उपस्मरत्य): स्मरण करता है, पुनः विचार करता है। 12. अभीक्ष्णम् (अभीक्ष्णम्): निरंतर, बार-बार। 13. सङ्कल्पः (सङ्कल्प): संकल्प, इच्छा।

व्याख्या:
यह श्लोक आत्मा और मन के संबंध को दर्शाता है। मन जब आत्मिक ज्ञान के संपर्क में आता है, तो यह ज्ञान निरंतर उसके साथ होता है।

आध्यात्म ज्ञान और मन:
जब आत्मिक ज्ञान व्यक्ति के मन में प्रवेश करता है, तो वह उसे लगातार और पुनः स्मरण करता रहता है। इस श्लोक में "सङ्कल्प" शब्द का प्रयोग इस बात को दर्शाता है कि आत्मिक या मानसिक संकल्प एक निरंतर प्रक्रिया होती है, जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति को प्रभावित करती है।
अभीक्ष्ण संकल्प:
यह सुझाव देता है कि व्यक्ति का मानसिक संकल्प निरंतर और बार-बार होने वाला होता है, जो उसकी चेतना पर प्रभाव डालता है। इस प्रक्रिया के द्वारा मन व्यक्ति के आत्मिक स्तर से जुड़ता है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>
शंकराचार्य के अनुसार, यह श्लोक आत्मा और मन के बीच के संबंध को बताता है। जब मन आत्मिक ज्ञान से जुड़ता है, तो वह बार-बार उस ज्ञान को स्मरण करता है और अपने संकल्प में उसे निरंतर बनाए रखता है। यह श्लोक ध्यान और साधना के महत्व को भी रेखांकित करता है, क्योंकि एकाग्रता और निरंतर संकल्प ही आत्मिक उन्नति की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं।

भाष्य:
1. आध्यात्मिक साधना में निरंतरता:
श्लोक से यह संदेश मिलता है कि आत्मिक ज्ञान या ध्यान की साधना में निरंतरता महत्वपूर्ण है। जब हम किसी लक्ष्य या आत्मिक स्थिति के प्रति अपनी इच्छाओं को बार-बार संकल्पित करते हैं, तब वह हमारी चेतना का हिस्सा बन जाती है।

2. **मन का महत्व:**
मन केवल बाहरी संसार से जुड़ा नहीं होता, बल्कि जब यह आत्मिक स्तर पर कार्य करता है, तो व्यक्ति को अपनी आत्मा से जुड़ने का अनुभव होता है। यह श्लोक इस संबंध को समझाता है।

समीक्षा:

1. आध्यात्मिक उन्नति की प्रक्रिया:
इस श्लोक में आत्मा और मन के बीच एक गहरा संबंध दिखाई देता है। जब मन आत्मिक ज्ञान से जुड़ता है, तो यह आत्मिक उन्नति की प्रक्रिया को प्रेरित करता है।

2. चेतना और संकल्प का प्रभाव:
यह श्लोक हमें बताता है कि मन के निरंतर संकल्प और ध्यान से आत्मा के साथ संबंध मजबूत होता है। यह प्रक्रिया हमारी चेतना में गहरा परिवर्तन लाती है।

सारांश:
यह श्लोक आत्मा और मन के बीच के संबंध को स्पष्ट करता है। जब मन आत्मिक ज्ञान से जुड़ता है, तो वह उसे लगातार स्मरण करता है, और इसका प्रभाव व्यक्ति की चेतना पर पड़ता है। यह श्लोक मानसिक संकल्प की निरंतरता और ध्यान के महत्व को दर्शाता है।

मन्त्र=४/६

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य ।
एतदेवं वेदाभि हैनँ सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥६॥

हे परमेश्वर !
आप सब प्राणियों में प्रिय
निरंतर नित्य हो,
भक्त मैं आनंदित
आत्मीय हूँ,
बस आराधना यही कि सम्मान पाता रहूँ |

शब्दार्थ:

1. **तद्ध** (तद्ध): वह। 2. **तद्वनं** (तद्वनं): वह जैसा है, या जैसा दिखता है। 3. **नाम** (नाम): नाम, रूप। 4. **इति** (इति): इस प्रकार। 5. **उपासितव्यं** (उपासितव्यं): पूजा जाना चाहिए, ध्यान में लाया जाना चाहिए। 6. **स** (स): वह। 7. **य** (य): जो। 8. **एतद्** (एतद्): यह। 9. एवं (एवं): इस प्रकार। 10. **वेदाभिः** (वेदाभिः): वेदों के द्वारा। 11. **हैनम्** (हैनम्): उसी में, उस ब्रह्म में। 12. **सर्वाणि** (सर्वाणि): सभी। 13. **भूतानि** (भूतानि): प्राणी, जीव। 14. **संवाञ्छन्ति** (संवाञ्छन्ति): चाहना करते हैं, प्राप्त करना चाहते हैं।

व्याख्या:

यह श्लोक ब्रह्म के अद्वितीय और सर्वोच्च रूप को व्यक्त करता है, जो सर्वव्यापक है।

ब्रह्म की पूजा:

यह श्लोक बताता है कि ब्रह्म की पूजा उस जैसा ही किया जाना चाहिए, जैसा वह है। इसका मतलब है कि ब्रह्म को अपने असली रूप में स्वीकार करते हुए उसकी उपासना करनी चाहिए।

सर्वव्यापकता और इच्छा:

यहाँ यह भी कहा गया है कि सभी प्राणी (सभी जीव) उसी ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा करते हैं। सभी जीवों का अंतिम लक्ष्य ब्रह्म के साथ मिलन है। वे ब्रह्म को जानने और समझने की कोशिश करते हैं, क्योंकि वही सबका परम ध्येय है।

शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):

शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक में ब्रह्म की सर्वोच्चता और सर्वव्यापकता को दर्शाया गया है। वह ब्रह्म, जिसका नाम और रूप वही है जैसा उसका स्वभाव है, उसे पूजा में उसी रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ब्रह्म का रूप वेदों द्वारा प्रतिष्ठित है, और सभी प्राणी उसी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए कार्यरत होते हैं।

भाष्य:

1. **ब्रह्म का वास्तविक रूप:**

श्लोक में यह स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्म को उसी रूप में पूजा करनी चाहिए, जैसे वह है। इसका मतलब है कि हम ब्रह्म के वास्तविक रूप को समझें और उसकी पूजा करें, न कि किसी संकुचित रूप में।

2. प्राणियों का उद्देश्य:

सभी जीवों का अंतिम उद्देश्य ब्रह्म के साथ एकत्व है। यह श्लोक यह बताता है कि हर जीव का प्रयास उसी अद्वितीय ब्रह्म की प्राप्ति की ओर है, जो सच्चाई और जीवन का स्रोत है।

समीक्षा:

1**. ब्रह्म के प्रति सच्ची श्रद्धा:**

यह श्लोक हमें बताता है कि ब्रह्म की पूजा केवल बाहरी रूप से नहीं, बल्कि उसकी वास्तविकता को समझते हुए की जानी चाहिए। यह एक गहरी आत्मिक श्रद्धा को दर्शाता है।

2. **सर्वव्यापकता और ब्रह्म:**

यह श्लोक यह भी बताता है कि ब्रह्म न केवल सर्वोच्च है, बल्कि वह सर्वव्यापक भी है। सभी जीव उसी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रेरित हैं, और यही उनका अंतिम उद्देश्य है।

सारांश:

यह श्लोक ब्रह्म की उपासना और उसकी सच्ची समझ के महत्व को दर्शाता है। सभी जीवों का उद्देश्य ब्रह्म की प्राप्ति है, और हमें उसी ब्रह्म की पूजा करनी चाहिए जैसे वह है, बिना किसी बाहरी भेदभाव के। यह श्लोक ब्रह्म के अद्वितीय रूप और उसकी सर्वव्यापकता को स्पष्ट करता है।

मन्त्र=४//७

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥७॥

हे गुरुदेव !
ब्रह्म मर्म का ज्ञान दे,
यथोचित
हर संभव विद्या
कीजिये व्यक्त,
सुनने सुनाने के लिए

ब्रह्म विद्या से कीजिये
अभिसक्त |

शब्दार्थ:

1. **उपनिषदं** (उपनिषदं): उपनिषद् (ज्ञान का सार, वेदांत का अंतिम भाग)। 2. **भो** (भो): हे (आग्रह का रूप)। 3. **ब्रूहि** (ब्रूहि): कहो, बोलो। 4. **युक्ता** (युक्ता): कहने वाली। 5. **त** (त): वह। 6. **उपनिषद्** (उपनिषद्): ज्ञान की अंतिम गहराई, जो गुरु और शिष्य के बीच होती है। 7. **ब्राह्मीं** (ब्राह्मीं): ब्राह्मण के रूप में, ब्रह्म का ज्ञान। 8. **वाव** (वाव): निश्चय ही, सचमुच। 9. **त** (त): वह। 10. **उपनिषदम** (उपनिषदम): उपनिषद का संदेश, ज्ञान की साधना।

व्याख्या:
यह श्लोक उपनिषद् के महत्व और उसकी भूमिका को स्पष्ट करता है।
उपनिषद् का ज्ञान:
यह श्लोक इस बात को रेखांकित करता है कि जब कोई उपनिषद् को गुरु से प्राप्त करता है, तो उसे न केवल एक सामान्य ज्ञान के रूप में, बल्कि एक उच्चतम ब्राह्मणिक, या आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझना चाहिए। उपनिषद् के गूढ़ अर्थ और उसकी सच्चाई को बताने की प्रक्रिया एक गहरे आत्मज्ञान की आवश्यकता है।
शिष्य और गुरु का संवाद:
उपनिषद् के अध्ययन में गुरु और शिष्य के बीच संवाद और ज्ञान का आदान-प्रदान अनिवार्य होता है। शिष्य को उपनिषद् की गहरी जानकारी

प्राप्त करने के लिए गुरु से मार्गदर्शन चाहिए, और यह प्रक्रिया स्वयं ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने का मार्ग है।

शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):

शंकराचार्य के अनुसार, उपनिषद् का ज्ञान केवल शब्दों का संग्रह नहीं होता, बल्कि यह ब्रह्मा और आत्मा के संबंध को समझने का एक गहरा उपाय है। यह श्लोक इस बात का प्रमाण है कि उपनिषद् केवल ब्राह्मणिक नहीं, बल्कि ब्रह्म के गूढ़ ज्ञान को समझने का साधन है। गुरु का मार्गदर्शन और उपनिषद् का सही अध्ययन ही इस ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग है।

भाष्य:

1. उपनिषद् का सही अर्थ:

उपनिषद् केवल शाब्दिक ज्ञान नहीं, बल्कि आत्मिक उन्नति का मार्ग है। इसे सही तरीके से समझना जरूरी है। यह श्लोक इस बात को समझाता है कि उपनिषद् का अध्ययन तभी सार्थक है जब हम उसे ब्राह्मणिक दृष्टिकोण से समझें।

2. गुरु-शिष्य संबंध:

गुरु और शिष्य के बीच संवाद और मार्गदर्शन उपनिषद् के अध्ययन में महत्वपूर्ण होता है। यह श्लोक यह दर्शाता है कि गुरु के ज्ञान से ही शिष्य उपनिषद् के गूढ़ अर्थ को समझ सकता है।

समीक्षा:

1. **उपनिषद् की गहराई:**

उपनिषद् का ज्ञान सिर्फ बौद्धिक स्तर पर नहीं, बल्कि एक गहरे आध्यात्मिक स्तर पर समझा जाता है। यह श्लोक हमें उपनिषद् के अध्ययन की इस गहरी प्रक्रिया से परिचित कराता है।

2. ब्राह्मणत्व की प्राप्ति:

यह श्लोक हमें बताता है कि उपनिषद् का सही अध्ययन ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह श्लोक गुरु-शिष्य के संबंध में ज्ञान के आदान-प्रदान की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है।

सारांश:

यह श्लोक उपनिषद् के ज्ञान और उसकी गहराई को समझाने का प्रयास करता है। उपनिषद् केवल शब्दों का ज्ञान नहीं, बल्कि यह ब्रह्म के ज्ञान और आत्मा से जुड़ी सच्चाई का प्रतीक है। यह श्लोक गुरु और शिष्य के संवाद में उपनिषद् के गूढ़ अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करता है।

मन्त्र=४//८

तसै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥८॥

हे परमपिता ब्रह्म !
आपको ही लक्ष्य माना,
निष्काम तप-जप का भाव जाना
वेदों के धर्म का जागरण
स्वभाव का आचरण
मान कर चाहूँ

असाध्य ब्रह्म ज्ञान
कृपा करें नाथ |

शब्दार्थ:

1. **तस्मै** (तस्मिन): उसी में, उसी से। 2. **तपो** (तपस्): तप, साधना, आत्मसंयम। 3. **दमः** (दमः): संयम, नियंत्रण। 4. **कर्मेति** (कर्म): कर्म, कार्य। 5. **प्रतिष्ठा** (प्रतिष्ठा): प्रतिष्ठा, आधार, स्थिरता। 6. **वेदाः** (वेदाः): वेद, ज्ञान के शास्त्र। 7. **सर्वाङ्गानि** (सर्वाङ्गानि): समग्र अंग, पूर्ण रूप से। 8. **सत्यमायतनम्** (सत्यमायतनम्): सत्य का स्थल, सत्य का आश्रय।

व्याख्या:

यह श्लोक वेदों और उनके तत्वों के बारे में बताता है।

तप, दम, और कर्म:

श्लोक में यह कहा गया है कि तप (आत्मसंयम और साधना), दम (संयम) और कर्म (सही कार्य) ये सभी वेदों के अंग हैं। यह सब एक साथ मिलकर सत्य के मार्ग को परिभाषित करते हैं।

वेदों का सार:

वेदों का उद्देश्य सत्य की प्राप्ति है। यह श्लोक यह बताता है कि वेदों का अध्ययन और अभ्यास उन तत्वों—तप, दम, और कर्म—के माध्यम से होता है, जो सत्य के प्रति समर्पण और स्थिरता को प्रदान करते हैं।

सत्यमायतनम्:

सत्य के स्थलीकरण का अर्थ यह है कि सत्य वह मूलभूत सिद्धांत है, जिसके आधार पर सभी वेदों और उनके अंगों का अस्तित्व है। सत्य वह अंतिम लक्ष्य है, जिसे प्राप्त करने का उद्देश्य वेदों का है।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

शंकराचार्य के अनुसार, इस श्लोक में तप, दम, और कर्म को वेदों के मूलभूत अंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेद केवल शास्त्र नहीं हैं, बल्कि ये सत्य को समझने और आत्म-साक्षात्कार की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। यह श्लोक बताता है कि सत्य का आश्रय और वेदों का तत्व, केवल आंतरिक साधना और संयम से ही अनुभव किया जा सकता है।

भाष्य:

1.वेदों का उद्देश्य:

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि वेद केवल ज्ञान के संग्रह नहीं हैं, बल्कि इनका उद्देश्य सत्य के साथ गहरी और सशक्त जुड़ाई है। सत्य की प्राप्ति के लिए तप, दम, और कर्म महत्वपूर्ण अंग हैं।

2. **तप और संयम की आवश्यकता:**

श्लोक में यह संकेत भी दिया गया है कि केवल बाहरी ज्ञान ही सत्य की प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है, बल्कि तप और संयम से आंतरिक सत्य की खोज करनी होती है।

समीक्षा:

1. **वेदों के गूढ़ अर्थ की ओर मार्गदर्शन:**

इस श्लोक में हमें यह समझाया गया है कि वेदों का अध्ययन केवल पढ़ने-लिखने तक सीमित नहीं होता। इसके बजाय, तप, दम, और कर्म जैसे आंतरिक साधनों के माध्यम से हम सत्य के वास्तविक अनुभव तक पहुंच सकते हैं।

2**. सत्य का उद्देश्य:**

वेदों का उद्देश्य केवल शाब्दिक ज्ञान नहीं है, बल्कि यह सत्य की पहचान और आत्म-ज्ञान प्राप्ति है। यह श्लोक हमें इस ओर प्रेरित करता है कि सत्य के मार्ग में तप, संयम और कर्म का पालन करना अनिवार्य है।

सारांश:
यह श्लोक वेदों के तत्वों—तप, दम और कर्म—के महत्व को दर्शाता है और यह समझाता है कि सत्य की प्राप्ति के लिए इन सभी का पालन आवश्यक है। वेदों का वास्तविक उद्देश्य सत्य की स्थिरता और अनुभव है, जिसे केवल आंतरिक साधना से ही पाया जा सकता है।

मन्त्र ४//९

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते ।
स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥९॥

हे प्रभु !
उपनिषद रूपी विद्या
आत्म तत्व से समृद्ध
कर्म चक्र से आबद्ध
आवागमन चक्र से निषिद्ध
पाप-पुण्य से परे
प्राप्त हो मुझे
इतनी कृपा करें |

शब्दार्थ:

1. **यो** (यो): जो व्यक्ति। 2. **वा** (वा): या। 3. **एताम्** (एताम्): इस (वेद, उपदेश या शिक्षा) को। 4. **एवं** (एवं): इस प्रकार, इस तरह। 5. **वेदापहत्य** (वेदापहत्य): वेद को त्यागकर, वेद का अपमान करके। 6. **पाप्मानम्** (पाप्मानम्): पाप, जो व्यक्ति पाप करता है। 7. **अनन्ते** (अनन्ते): अंतहीन रूप से, निरंतर। 8. **स्वर्गे** (स्वर्गे): स्वर्गलोक, उच्च लोक। 9. **लोके** (लोके): संसार, लोक। 10. **ज्येये** (ज्येये): श्रेष्ठ, उच्च। 11. **प्रतितिष्ठति** (प्रतितिष्ठति): स्थापित होता है, स्थित होता है।

व्याख्या:

यह श्लोक वेदों के महत्व और उनके त्याग के परिणामों को स्पष्ट करता है।

वेदों का त्याग और पाप:

इस श्लोक में कहा गया है कि जो व्यक्ति वेदों को त्यागकर पाप का अनुसरण करता है, वह अपने कर्मों के परिणामस्वरूप उच्च लोक में स्थान प्राप्त करता है। वेदों का अपमान और पापी कर्म व्यक्ति को, भले ही वह अच्छे कर्म करता हो, एक उच्च लोक में स्थापित करते हैं।

स्वर्गलोक की प्राप्ति:

यह श्लोक इस तथ्य को भी स्थापित करता है कि वेदों के अनुसार, स्वर्गलोक एक प्रकार का पुरस्कार है, जो अच्छे कर्मों या पापों के फलस्वरूप प्राप्त होता है। स्वर्गलोक में स्थित होना किसी का उद्देश्य हो सकता है, लेकिन यह स्थायित्व में नहीं होता।

<u>शंकराचार्य का भाष्य (संक्षेप):</u>

शंकराचार्य के अनुसार, वेदों के ज्ञान और आचार्य के मार्गदर्शन के बिना यदि कोई व्यक्ति पापों में लिप्त रहता है, तो उसका स्थान स्वर्गलोक में भी

अनिश्चित और अस्थायी होता है। शंकराचार्य ने यह भी कहा कि केवल बाह्य कर्मों का पालन करने से अंतिम मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, बल्कि सही ज्ञान की प्राप्ति और आत्मा का साक्षात्कार आवश्यक है।

भाष्य:

1. **कर्म और ज्ञान का महत्व:**

यह श्लोक हमें बताता है कि पापों का अनुसरण करने वाले व्यक्ति को स्वर्गलोक में उच्च स्थान प्राप्त होता है, लेकिन यह स्थान स्थायी नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि कर्मों का फल भले ही अच्छा हो, लेकिन सत्य का ज्ञान ही आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक है।

2. **स्वर्ग का अस्थायी प्रकृति:**

श्लोक में स्वर्गलोक की अस्थायी स्थिति को बताया गया है। यह शास्त्र हमें समझाता है कि स्वर्ग का स्थान केवल अच्छे कर्मों का फल है, लेकिन यह अंतिम लक्ष्य नहीं है। आत्मा के सच्चे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मोक्ष ही सबसे उच्चतम स्थिति है।

समीक्षा:

1. **कर्मफल का महत्व:**

इस श्लोक में यह स्पष्ट किया गया है कि कर्मों का फल, चाहे वह पाप हो या पुण्य, व्यक्ति को एक उच्च या निम्न लोक में स्थित करता है। हालांकि, इस प्रकार के फल स्थायी नहीं होते, क्योंकि वे केवल शरीर के कर्मों से जुड़े होते हैं।

2. **मूल उद्देश्य मोक्ष है:**

इस श्लोक के माध्यम से यह संकेत मिलता है कि वेदों का सही अध्ययन

और आत्म-साक्षात्कार ही अंतिम उद्देश्य होना चाहिए, न कि केवल स्वर्गलोक की प्राप्ति।

सारांश:
यह श्लोक यह दर्शाता है कि पाप का अनुसरण करने से व्यक्ति को स्वर्गलोक में उच्च स्थान प्राप्त हो सकता है, लेकिन यह स्थान स्थायी नहीं है। इसके बजाय, आत्मा के सच्चे ज्ञान की प्राप्ति और मोक्ष ही सबसे उच्चतम और स्थायी उद्देश्य है।

केन उपनिषद का महत्व एवं समापन

केन उपनिषद भारतीय दर्शन और वेदांत का एक प्रमुख ग्रंथ है, जो सामवेद का भाग है। यह उपनिषद गूढ़ और दार्शनिक प्रश्नों के माध्यम से आत्मा, ब्रह्म और जीवन के रहस्यों को उजागर करता है। इसके चार खंड (खंडिका) हैं, और इसमें संवाद के रूप में गहन विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

भाषित (व्याख्या) केन उपनिषद

1. **नाम और प्रश्न का अर्थ**

"केन" का अर्थ है "किसके द्वारा"। उपनिषद का आरंभ इस प्रश्न से होता है:
"किसके द्वारा हमारी चेतना, मन, वाणी और प्राण संचालित होते हैं?"
यह प्रश्न जीवन के मूल रहस्य को समझने के लिए उठाया गया है।

2. **प्रथम खंड: प्रश्न और उत्तर**

प्रश्न: **"किसके आदेश से मन सोचता है? किसके निर्देश से प्राण (श्वास) चलता है? किसके बल से वाणी बोलती है और इंद्रियां कार्य करती हैं?"**
उत्तर: यह सब ब्रह्म (परम सत्य) के कारण होता है।
ब्रह्म न तो इंद्रियों से जाना जा सकता है, न ही मन से। वह साक्षी है, जो सबकुछ को जानता है लेकिन स्वयं ज्ञेय (जाने जाने योग्य) नहीं है।

महत्त्वपूर्ण सिद्धांत:

"मनसो मनः" (मन का मन) – ब्रह्म वह शक्ति है, जो मन और इंद्रियों के पीछे कार्य करती है।
इंद्रियां और मन ब्रह्म के बिना कार्य नहीं कर सकते।

3. **द्वितीय खंड: ब्रह्म का अनुभव**

यह खंड बताता है कि ब्रह्म को केवल अनुभव किया जा सकता है, समझा नहीं जा सकता।
जो यह सोचता है कि वह ब्रह्म को जानता है, वह वास्तव में इसे नहीं जानता।
ब्रह्म को जानने के लिए अहंकार का त्याग और ध्यान की आवश्यकता है।

उपदेश:
ब्रह्म को केवल हृदय से अनुभव किया जा सकता है।
यह इंद्रियों और तर्क की सीमा से परे है।

4. **तृतीय खंड: देवताओं और ब्रह्म का संवाद**
एक कथा के माध्यम से बताया गया है कि देवता (इंद्र, अग्नि, वायु) अपनी शक्तियों पर घमंड करते हैं।
ब्रह्म उनकी शक्तियों की परीक्षा लेता है और उन्हें यह सिखाता है कि उनकी शक्तियां भी ब्रह्म से ही आती हैं।
यह शिक्षा अहंकार-त्याग और विनम्रता का महत्व बताती है।

5. **चतुर्थ खंड: ब्रह्म और आत्मा का ज्ञान**
अंतिम खंड यह स्पष्ट करता है कि ब्रह्म को जानने वाला अमरत्व प्राप्त करता है।
ब्रह्म ही सत्य है, और इसे जानने वाला मनुष्य अपने सत्यस्वरूप को पहचानता है।

निष्कर्ष:
आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं।

ब्रह्म का साक्षात्कार आत्म-ज्ञान द्वारा संभव है।

मुख्य शिक्षाएं

1. ब्रह्म अज्ञेय (अज्ञानी की समझ से परे): इसे केवल आत्म-अनुभव द्वारा जाना जा सकता है।
2. अहंकार का त्याग: ब्रह्म को जानने के लिए व्यक्ति को अपने अहंकार का परित्याग करना चाहिए।
3. ध्यान और आत्मनिरीक्षण: ब्रह्म को तर्क से नहीं, बल्कि साधना और आत्म-निष्ठा से जाना जा सकता है।
4. ज्ञान और अमरत्व: ब्रह्म को जानने से व्यक्ति मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है और अमरत्व को प्राप्त करता है।

सारांश में:

केन उपनिषद हमें यह सिखाता है कि जीवन के पीछे कार्य करने वाली शक्ति ब्रह्म है, जो दृश्य और अदृश्य दोनों रूपों में सर्वत्र विद्यमान है। इसे जानने के लिए व्यक्ति को बाहरी संसार से हटकर अपने भीतर झांकना होगा और आत्मा के साथ एकत्व स्थापित करना होगा।

केनोपनिषद वेदों के सामवेद शाखा से संबंधित एक महत्वपूर्ण उपनिषद है। यह उपनिषद ज्ञान, अस्तित्व, ब्रह्म, और आत्मा के अद्वितीय स्वरूप पर प्रकाश डालता है। इसे "कैन उपनिषद" या "केन उपनिषद" के नाम से भी जाना जाता है। यह उपनिषद 4 अध्यायों (वाले) में विभाजित है और कुल 34 श्लोक होते हैं।

प्रमुख विषय और दर्शन:

केनोपनिषद का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि ब्रह्म (सर्वोच्च परमात्मा)

और आत्मा (व्यक्तिगत आत्मा) का वास्तविक स्वरूप एक ही है, और हम इसे समझने और अनुभव करने के लिए भीतर से जागरूकता प्राप्त कर सकते हैं। इसमें ब्रह्म के उस परम स्वरूप के बारे में विस्तार से बताया गया है, जिसे हम देख, समझ या अनुभव नहीं कर सकते। यह उपनिषद उस "अज्ञेय" ब्रह्म के बारे में बताता है, जो सभी ज्ञानेन्द्रियों से परे होता है, फिर भी वह सब कुछ में विद्यमान रहता है।

श्लोकों का सार:

1. प्रथम श्लोक: इसमें यह सवाल उठाया जाता है कि "उस" (परमात्मा) को कौन जानता है, जो हमारे इंद्रियों से परे है? क्या हम उसे अनुभव कर सकते हैं? यह श्लोक ब्रह्म के अदृश्य और अज्ञेय स्वरूप पर जोर देता है।
2. दूसरा श्लोक: इस श्लोक में यह बताया जाता है कि ब्रह्म को जानने के बाद भी वह हमारे द्वारा किसी विशेष रूप में नहीं देखा जा सकता। यह ब्रह्म को केवल अनुभव द्वारा जाना जा सकता है, न कि इंद्रियों के माध्यम से।
3. तीसरा श्लोक: ब्रह्म के अदृश्य स्वरूप को समझने के लिए हमें अपने आत्मा और ब्रह्म के बीच के अंतर को जानना चाहिए। यह श्लोक सिखाता है कि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं, केवल हमारा दृष्टिकोण ही भिन्न है।
4. चौथा श्लोक: यह श्लोक यह दर्शाता है कि जो ब्रह्म हमें दिखाई नहीं देता, वही सब कुछ को चलाने वाली शक्ति है, और वह सर्वव्यापी है। इसे समझने और अनुभव करने के लिए हमें ध्यान और साधना की आवश्यकता होती है।

केनोपनिषद का उद्देश्य:

केनोपनिषद का उद्देश्य यह है कि हम इंद्रियों से परे, आत्मा और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को समझें। इसमें अद्वितीयता और ब्रह्म की सर्वव्यापकता

को व्यक्त किया गया है, जिससे यह उपनिषद वेदांत के सिद्धांतों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनता है।
यह उपनिषद यह भी बताता है कि ब्रह्म का अनुभव केवल बुद्धि और तर्क से नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए साधना, ध्यान और आत्मज्ञान की आवश्यकता होती है।

केनोपनिषद: एक विस्तृत परिचय

केनोपनिषद वेदों के उपनिषद भाग का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह सामवेद के तलवकार ब्राह्मण के अंतिम खंड में स्थित है। इस उपनिषद में मुख्यतः ब्रह्म की प्रकृति और मनुष्य के जीवन में उसकी भूमिका को समझाया गया है।

केनोपनिषद का नामकरण

इस उपनिषद का नाम इसके पहले मंत्र के पहले शब्द 'केन' से लिया गया है। 'केन' का अर्थ है 'किसके द्वारा'। यह प्रश्न पूरे उपनिषद का मूल है और यह पूछता है कि ब्रह्मांड की सभी शक्तियां किसके द्वारा संचालित होती हैं।

केनोपनिषद की संरचना और विषय

यह उपनिषद चार खंडों में विभाजित है। प्रत्येक खंड में ब्रह्म के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया गया है।

* पहला और दूसरा खंड: इन खंडों में गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से ब्रह्म की प्रकृति और उसकी सर्वव्यापकता को समझाया गया है।
* तीसरा और चौथा खंड: इन खंडों में देवताओं के ब्रह्म को समझने के प्रयास और उनकी असफलता को दर्शाया गया है। अंत में, देवी ऊमा के माध्यम से ब्रह्म के सच्चे स्वरूप को प्रकट किया गया है।

केनोपनिषद का मुख्य संदेश

केनोपनिषद का मुख्य संदेश यह है कि ब्रह्म सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। वह सब कुछ का कारण है और सब कुछ उसमें विलीन हो जाता है। मनुष्य को अपने अंदर ब्रह्म को खोजने का प्रयास करना चाहिए।

केनोपनिषद का महत्व

केनोपनिषद वेदांत दर्शन का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह उपनिषद ब्रह्म की प्रकृति को समझने में हमारी मदद करता है और हमें आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है।

केनोपनिषद के कुछ प्रमुख बिंदु:

* ब्रह्म की सर्वव्यापकता: ब्रह्म सब कुछ में व्याप्त है।
* ज्ञान का महत्व: ज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है।
* आत्मज्ञान: अपने भीतर ब्रह्म को खोजने का प्रयास करना।
* गुरु का महत्व: गुरु के मार्गदर्शन के बिना आत्मज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है।

क्या आप केनोपनिषद के किसी विशेष पहलू के बारे में अधिक जानना चाहते हैं?

शांति पाठ की यह श्लोकों में शांति और मानसिक शुद्धता के लिए प्रार्थना की जाती है। इस पाठ का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करना है, साथ ही वेदों और उपनिषदों की गहरी समझ और उनके अनुसार जीवन जीने की इच्छा प्रकट करना है। आइए अब शांति पाठ की विस्तृत समीक्षा, व्याख्या, भाष्य और छंदनुवाद को देखें।

विस्तृत समीक्षा:

यह शांति पाठ चार प्रमुख श्लोकों से बना है जो शांति की स्थापना के लिए

विभिन्न अंगों से प्रार्थना करते हैं। यह श्लोक वाणी, श्रवण, दृष्टि, बल, और अन्य इन्द्रियों के माध्यम से शांति और समृद्धि की कामना करते हैं।

1. "ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः"
यहां व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक ताकत की प्रार्थना की जाती है। यह श्लोक भगवान से निवेदन करता है कि उसकी सारी इन्द्रियाँ (वाणी, प्राण, दृष्टि, श्रवण आदि) शुद्ध और शक्तिशाली हो जाएं ताकि वह सही मार्ग पर चल सके।

2. "श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।"
यह श्लोक सभी इन्द्रियों की शक्ति और शुद्धता की कामना करता है। इसका उद्देश्य जीवन में पूर्ण रूप से जागरूक और सक्रिय रहना है।

3. **"सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां"**
इस श्लोक में यह प्रार्थना की जाती है कि व्यक्ति कभी भी ब्रह्म के अस्तित्व को नकारे नहीं। यह शांति और अद्वितीय ब्रह्म की शरण में रहने की भावना को व्यक्त करता है।

4. "तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु"
यहाँ उपनिषदों के ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति को धर्म की प्रेरणा मिलने की बात की जाती है। यह श्लोक उस अवस्था में रहने की प्रार्थना करता है जहाँ धर्म और सत्य का पालन करते हुए आत्मिक शांति प्राप्त हो।

व्याख्या और भाष्य:

1. **"ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि..."**

यह श्लोक शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की प्रार्थना करता है। यहां हम ईश्वर से यह आशीर्वाद चाहते हैं कि हमारे अंग, वाणी, प्राण, श्रवण, दृष्टि और अन्य इन्द्रियाँ शुद्ध और स्वस्थ हों, जिससे हम अपने कर्तव्यों को सही ढंग से निभा सकें।

2. **"सर्वं ब्रह्मौपनिषदं..."**
इस श्लोक में यह भावना व्यक्त की जाती है कि ब्रह्म का अस्तित्व सार्वभौम है और उपनिषदों के ज्ञान के द्वारा ब्रह्म के सत्य को आत्मसात किया जाए। व्यक्ति इस ब्रह्मा से कभी भी न दूर हो, यही प्रार्थना की जाती है।

3. **"तदात्मनि निरते..."**
इस श्लोक के माध्यम से यह प्रार्थना की जाती है कि व्यक्ति उपनिषदों के ज्ञान में निरंतर समाहित रहे और सच्चे धर्म का पालन करें। इससे आत्मिक शांति और सुख की प्राप्ति होती है।
यह पाठ प्राचीन संस्कृत साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से बल्कि जीवन जीने की कला से भी जुड़ा हुआ है।

इस शांति पाठ का प्रभाव व्यक्ति की मानसिक स्थिति को शांति, संतुलन और जागरूकता की ओर मार्गदर्शन करता है, जिससे जीवन के हर क्षेत्र में सफलता और संतुष्टि की प्राप्ति होती है।

केनोपनिषद का समापन आलेख

केनोपनिषद भारतीय वेदांत दर्शन का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो श्रुतियों में से एक माना जाता है। यह उपनिषद वेदों के ज्ञानी और आत्मज्ञान की ओर संकेत करता है, जिसमें आत्मा, ब्रह्म और उनके संबंधित रहस्यों पर गहन चर्चा की गई है। केनोपनिषद का समापन गूढ़ और अद्वितीय बोध पर आधारित है, जो हमें संसार और आत्मा के अदृश्य संबंध को समझाने की कोशिश करता है।

उपनिषद का सारांश और समापन:

केनोपनिषद का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म (सर्वव्यापी परमात्मा) और आत्मा के बीच के संबंध को समझना है। यह उपनिषद मुख्य रूप से सवालों और उत्तरों के माध्यम से ज्ञान का प्रतिपादन करता है। श्लोकों में, ऋषि ने यह सवाल किया है कि कौन उस शक्ति को प्रेरित करता है जो हमारे इन्द्रियों और मन को कार्य करने के लिए उत्तेजित करती है, और उसी शक्ति को खोजने का प्रयास किया जाता है।

केनोपनिषद का केंद्रीय विचार यह है कि ब्रह्म और आत्मा का अद्वितीय और अज्ञेय रूप है। ब्रह्म के बारे में कहा जाता है कि वह न तो किसी इन्द्रिय से देखा जा सकता है, न बुद्धि से समझा जा सकता है, और न ही कोई शब्द उसे व्यक्त कर सकता है। वह अद्वितीय, असीम और निराकार है। यह उपनिषद हमें यह समझाने का प्रयास करता है कि सत्य की प्राप्ति केवल शारीरिक इन्द्रियों के माध्यम से नहीं हो सकती, बल्कि आत्म-ज्ञान और ध्यान से होती है।

केनोपनिषद का समापन इस विश्वास के साथ होता है कि वास्तविक ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपने आत्मा की पहचान करनी

चाहिए। जो व्यक्ति अपने अंदर उस ब्रह्म को पहचान लेता है, वह न केवल संसार के दुखों से मुक्त होता है, बल्कि आत्मा की शांति और ब्रह्मा के अद्वितीय सत्य को प्राप्त करता है।

इस प्रकार, केनोपनिषद हमें आत्म-ज्ञान, ब्रह्मा के अद्वितीय स्वरूप, और उनके साथ एकात्मता के रहस्यों से अवगत कराता है। यह उपनिषद हमें यह शिक्षा देता है कि जीवन का उच्चतम लक्ष्य आत्मा के सत्य को पहचानना और ब्रह्मा के साथ एकता स्थापित करना है।

निष्कर्ष:

केनोपनिषद की शिक्षाएं जीवन को गहरे अर्थों में समझने और आत्मा के उद्देश्य की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती हैं। यह उपनिषद हमें बाहरी संसार से परे जाकर अपने भीतर झांकने की ओर मार्गदर्शन करता है। शांति, ज्ञान और ब्रह्मा के साथ एकता की प्राप्ति ही इसके जीवनदर्शन का प्रमुख उद्देश्य है।